

परमपूजनीय

डॉ. हेडगेवार



परमपूजनी

डॉक्टर हेडगेवार

प्रकाशक:—
वा. रा. शेंडे, नागपुर शहर

आवृत्ति छठी]   सितम्बर १९५२   [मूल्य १) रु०

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठांक
(१) महान् व्यक्तित्व की झलक	१
(२) वज्राघात	२३
(३) विचारधारा	४०
(४) कुछ पत्र	९५
(५) सूक्ति-संग्रह	११३
(६) श्रद्धाञ्जलि	१२६

प्रबन्धक : देवीसिंह भार्गव, मुद्रक : मोहन प्रिंटिंग प्रेस, उज्जैन ।





महान् व्यक्तित्व की झलक

"क्रिया सिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे"

विश्व में जो कतिपय बुद्धि के लिये अतर्क्य और अनपेक्षित बातें हो जाया करती हैं, उन्हीं में से कुछको हम "ईश्वर का निष्ठुर न्याय" कहते हैं। कोई पौधा घनघोर घटाओं, मूसलाधार बरसात और अग्नि बरसाने वाली गरमियों को भी सहते हुए लहलहाते हुए बढ़ता जाता है। और फिर किसी दिन अकस्मात् वायु के एक मन्द झकोरे से ही आहत होकर समूल उखड़ जाता है। क्या नाम देंगे इस विधि-विधान को? वही नाम अपने परमपूजनीय डॉक्टर जी के महाप्रयाण के लिये भी योग्य होगा।

श्रद्धाञ्जलि

किस नाम से उनका पावन स्मरण करें? उन्हें हिन्दू राष्ट्र के मंत्र-दृष्टा, समर्थ और दिव्य दृष्टि के नेता, वीर वृत्ति के जनक, सहयोगियों के आधार, अभागे बालकों का सतत हित-चिंतन करने वाले पिता, सज्जनों के स्नेह भरे सुहृद या दीन-बन्धु कहकर उनकी योग्यताओं को शब्द-रूप देने का प्रयत्न करना भी अनुचित है। अनन्त आकाश के समान विस्तृत महान विभूति-मत्व को मर्यादा की सीमाओं में कैसे बद्ध किया जाय? उनके प्रसिद्धि पराङ्मुख और त्यागमय जीवन को रेखा बद्ध करने योग्य शब्दों का अभाव होना स्वाभाविक ही है। पर अपनी प्रिय ध्येयमूर्ति की पार्थिव पूजा किये बिना भक्त हृदयों को चैन कैसे मिले? समाधान यों तो हो ही नहीं सकता। समाधि पर श्रद्धा-पूर्वक भाव-भीने पुष्पों की श्रद्धांजलि चढ़ाने से अवश्य सात्विक समाधान प्राप्त होता है। यही भावना हमें इस प्रयत्न में प्रेरित कर रही है। अस्तु।

शक संवत् १८१२ (विक्रमीय सं० १९४६) की वर्ष प्रतिपदा के शुभ दिन डॉक्टर जी का जन्म नागपुर के एक गरीब ब्राह्मण-कुल में हुआ

था। यह घराना नागपुर के एक अत्यन्त प्राचीन और सनातनी घरानों में से था। पूर्वज थे निजाम राज्य के कन्दकुर्ती गांव के। वेदाभ्यास और पंडिताई थी कुल पैतृक-संपत्ति। प्राचीन काल से व्यवसाय एक ही चला आया था—विद्यार्जन और विद्यादान। पर पुरोहिताई न करना इस कुल का वैशिष्ट्य था। डॉक्टरजी के पिता श्री० पं० बलीराम पंत के तीन पुत्र हुए, सबसे बड़े महादेव शास्त्री, मंझले सीताराम पंत और सबसे छोटे हमारे चरित्रनायक केशवराव जी। इनमें से महादेवरावजी का स्वर्गवास बहुत पहले होगया था। माननीय आबाजी श्री० डॉक्टर जी के चाचा थे, पर डॉक्टरजी की ममता अपने पिताजी की अपेक्षा भी उनपर अधिक रही।

डॉक्टर जी का परिवार

नागपुर के सन् १९०२ के प्लेग का प्रलय तांडव अविस्मरणीय है। डॉक्टरजी की पूज्य माता जी की बीमारी में पिता पं० बलीरामजी ने सनातनी संस्कारों के कारण अशौच-शुद्धि के लिये एक दिन में १०८ बार स्नान किया। शास्त्रीजी की कर्मठता चाहे जैसी स्तुत्य हो पर प्लेग के हृदय में दया को स्थान कहां? शास्त्रीजी पर भी प्लेग का आक्रमण हुआ। बड़े लड़के महादेव शास्त्री पर ही घर की और दवा पानी की सारी जवाबदारी आ पड़ी। उन्होंने सीताराम पंत को पड़ौस के एक डॉक्टर के यहां से दवा लाने को भेजा। पर उन्होंने घर लौटकर देखे मां-बाप के मृत देह। उस समय सीताराम पंत की उमर १८ वर्ष की थी और हमारे डॉक्टरजी की केवल बारह। पिताजी और माताजी का इस तरह एक साथ हृदयद्रावक अंत हो जाने के कारण प्रेम की शीतल छाया नष्ट होगई। सीताराम पंत बड़े भाई का कठोर अनुशासन सहन न कर सकने के कारण वेदाध्ययन के लिये घर के बाहिर निकल पड़े।

माता-पिता का हृदय-द्रावक अंत

डॉक्टरजी के ज्येष्ठ भ्राता महादेव शास्त्री का शरीर सुदृढ़ और अच्छा था। उन्हें कसरत का बड़ा शौक था। घर में ही अखाड़ा था। उनका

ज्येष्ठ बन्धु

स्वभाव अत्यन्त उग्र था और सब ओर धाक ऐसी जमी थी कि दरवाजे में कुंडी भी न अटकाते हुए बाहिर चले जाते तो भी किसी की सूने घर में प्रवेश करने की हिम्मत न होती थी। स्वभाव क्रोधी होते हुए भी वे थे बिल्कुल खरे। अन्याय और अपमान के तो नाम से ही उन्हें चिढ़ थी। एक बार तिलक रोड के एक मकान के दुमंजिले से उन्होंने देखा कि सड़क पर किसी निरपराध हिन्दू को मुसलमान निर्दयता-पूर्वक पीट रहे हैं। देखते ही क्रोधावेश में दुमंजिले से सीधे सड़क पर कूद पड़े और मुसलमानों की अपने लोह-सदृश हाथों से यथोचित खबर ली।

स्वभाव की यह उग्रता सभी भाइयों में कम-अधिक अंशों में थी। पर पूजनीय डॉक्टरजी ने समझ लिया कि तामसी और उग्र स्वभाव लोक संग्रह और संगठन के कार्य में विष रूप है और तत्काल अपना स्वभाव बदल कर उन्होंने शांत और प्रेमभरी वृत्ति अपना ली। और उसे अखंड रूप से निभाया भी।

मूल स्वभाव में परिवर्तन

संगठन में तो हरएक घटक को अपनी खुद की इच्छा अनिच्छा का ख्याल दूर कर, अन्य घटकों से मेल बनाये रखने की नीति पालनी पड़ती है। स्वभाव-वैचित्र्य और वैशिष्ठ्य को संगठन में स्थान नहीं। सभी प्रकार की मनोवृत्तियों का आपस में संबंध आने के कारण होने वाला संघर्ष भी संगठन के लिये विघातक न हो बैठे इसीलिये सभी घटकों को सचेत रहकर, अपने स्वभाव की त्रुटियों को कांट छांटकर स्वयं को संगठन के अनुरूप बना लेना चाहिये। डॉक्टरजी ने इस सावधानी का प्रारम्भ अपने से ही किया। उन्होंने प्रसंग आने पर कठोर तथा कुत्सित शब्द निर्विकार रूप से सुन सकने योग्य स्थितप्रज्ञता, सहनशीलता तथा मन की गंभीरता अत्यन्त परिश्रम एवं अभ्यास से सम्पादन कर ली थी। बचपन में शरीर मजबूत न था। पर नियमित व्यायाम के द्वारा उन्होंने भरपूर शारीरिक शक्ति प्राप्त करली। रोज तड़के ४-५ मील की दौड़ सुबह शाम की कसरत, दो-दो सेर धारोष्ण दूध का पीना आदि कार्य-क्रम बीस

वर्षों तक अबाध रूप से चलने के कारण ही वे अपना बाद का कष्टमय जीवन सुखद और सफल बनाने में समर्थ हो सके।

ऐसी प्रखर शारीरिक शक्ति के अनुरूप आत्मविश्वास और लगन भी उनमें थी। घर में खुदवाये हुए नये कूप का वास्तुकर्म होना था उन्होंने निश्चय किया कि एक बार सारा पानी निकालकर कूआं साफ कर दिया जाय। इसमें बड़ों की आज्ञा मिलनी संभव न थी। इसलिये घर की आवश्यकताओं के लिये पानी पहिले अलग भर कर, उन भाइयों ने रातों-रात कूए को उलीचकर उसकी तली दर्पण के समान स्वच्छ कर डाली।

मन की दृढ़ता एवं सातत्य

घर में गरीबी और पंडिताई वृत्ति होने के कारण डॉक्टरजी बचपन में यजमानों के यहां देवपूजन करके वहीं भोजन भी किया करते थे। गरीबी के सुख गरीब ही जानते हैं। चिन्ता, कष्ट, अपमान और ग्लानि इसके सदा के साथी हैं। राष्ट्र का महान् सौभाग्य ही है कि दुःख और दैन्य की इन ज्वालाओं से उनका व्यक्तित्व झुलस कर मुरझाया नहीं। उनके ध्येयनिष्ठ जीवन का प्रारम्भ भी सामान्य था। पाठशाला की छोटी सी दुनियां में बच्चे छत्रपति शिवाजी का पाठ तब भी पढ़ते थे और आज भी पढ़ा करते हैं। परन्तु अपने बचपन में संवेदनापूर्ण अंतःकरण से पढ़ा हुआ वह पाठ डॉक्टरजी आमरण नहीं भूले। हजारों कोस दूर से, सात समुद्र पार से विदेशी लोग हमारे देश में आये, व्यापारी कंपनी की यहां स्थापना की और चुटकी बजाते ही कंपनी-सरकार की स्थापना भी हो सकी। डॉक्टरजी के बाल-मन को यह बात ही तर्क-संगत प्रतीत न होती थी। मुट्ठी भर लोगों को इस विशाल देश पर राज्य करते हुए देखकर वे सदा मर्म-पीड़ित हो उठते थे। मरहठा साम्राज्य के गत वैभव की याद दिलाने वाले भग्नावशेष भोंसलों की राजधानी में विद्यमान थे। इस करुण दृश्य को देखकर किस विचार शील हिन्दू का

बाल्य जीवन में पड़े हुए संस्कार

हृदय व्यग्र न होता? डाक्टरजी तो जन्मजात ध्येयवादी थे। उनका युवक, भाव-पूर्ण अंतःकरण अवश्य ही अपने पूर्वज वीर पुरुषों से समरस होकर उनकी विजयों पर नाचा होगा और पराभवों का स्मरण कर खिन्न हुआ होगा। उनके सारे जीवन-कार्य पर इस अतीत इतिहास की अमिट छाप अंकित है।

राष्ट्रीय जीवन का प्रारंभ

डॉक्टरजी के अंतःकरण में राष्ट्रोद्धार और लोक-संग्रह की ज्वलंत भावनाएँ थीं, परन्तु लोक-प्रसिद्धि से उन्हें घृणा थी। कई प्रसंग ऐसे आये जिनके फल-स्वरूप उन्हें ऐसी बाल-घूंटी मिली, कि वे उम्र भर ख्याति से घृणा ही करते रहे अपनी भावनाओं का अभिनंदन, संदेश, शोक-सान्त्वन शुभचिंतन, आशीर्वचन आदि के रूप में प्रदर्शन करना वे घृणित समझते थे इसके मूल में यही कीर्ति-विन्मुखता की वृत्ति थी। विद्यार्थी-दशा में उनके नानाविधि कार्य कलापों में उत्कट देशप्रेम और स्वातंत्र्य की तीव्र लगन व्यक्त होती है। स्व० जनार्दन विनायकराव ओक उन दिनों नील सिटी हॉई स्कूल के मुख्य अध्यापक थे। डॉक्टरजी ने "वंदेमातरम्" के प्रश्न को लेकर बहुत जोरों से आन्दोलन किया और वे दिन ऐसे थे जबकि 'वंदेमातरम्' का उच्चार भी अपराध माना जाता था। अपने सारे बाल-मित्रों में स्वातंत्र्य की धुन उत्पन्न करने वाले इस "अपराधी" को तत्कालीन "रिस्ले सरक्युलर" की दृष्टि से स्कूल में रहने देना अनुशासन प्रिय हेडमास्टर साहेब को आपत्तिजनक प्रतीत हुआ। उनका नाम स्कूल से काट दिया गया। तदुपरान्त डॉक्टरजी ने यवतमाल की राष्ट्रीय शाला में प्रवेश किया। परन्तु कुछ ही दिन बाद सरकार ने संगीनों की नोक पर वह शाला भी बंद करवा दी। इसलिये डॉक्टरजी को पूना जाना पड़ा और वहां के राष्ट्रीय स्कूल से वे मैट्रिक उत्तीर्ण हुए। कुछ काल प्राइवेट स्कूलों में नौकरी करते हुए और घर पर लड़कों को पढ़ाते हुए उन्होंने आगे की पढ़ाई के लिये कुछ पैसे इकट्ठे किये और सन् १९१० में कलकत्ता के नेशनल मेडिकल कॉलेज में भर्ती हो गये। यहीं से डॉक्टरजी का वास्तविक जीवन प्रारम्भ होता है।

१९०७-८ के प्रचण्ड स्वदेशी-आंदोलन के बाद लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय प्रभृति राष्ट्र-नेताओं को जेलों की चहार दीवारियों में बन्द कर दिया गया और उनके द्वारा चेताई गई स्वदेशी एवं राष्ट्रीयता की ज्वाला बुझ सी गई। चारों ओर अकर्मण्यता का वातावरण फैल गया। परन्तु डॉक्टरजी ने तो १९०५ से ८ तक के राष्ट्रीय आंदोलन में राष्ट्रीय शिक्षा के सबक सीखे थे। उनके हृदय की तीव्रता लव मात्र भी कम न हुई। उत्तरोत्तर अधिक प्रखर हो चली। वे राजनीति के गरम दल में शामिल हो गये। उनका छः वर्ष तक कलकत्ते में वास हुआ। इस काल में सैंकड़ों ध्येयवादी तरुणों का मण्डल उनके आसपास एकत्रित होगया और डॉक्टरजी ने अपना कार्य-क्षेत्र काफी विस्तृत कर लिया। इस समय के सुप्रसिद्ध बंगाली देशभक्त बाबू श्यामसुंदर चक्रवर्ती, बाबू मोतीलाल घोष, अमृत बाजार पत्रिका के संपादक गण और अन्य अनेक राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं से डॉक्टरजी के निकट संबंध स्थापित होगये।

कलकत्ते में बिताये हुए छः वर्ष

सन् १९०८ से कलकत्ते में "महाराष्ट्र लॉज" शुरू हुआ था। उसमें बरार, मध्यप्रांत, पूना, कर्नाटक आदि प्रांतों से आये हुए कई मेडिकल कॉलेज के विद्यार्थी रहते थे। नये २ विद्यार्थी अधिकाधिक संख्या में आने लगे। स्थान के परिमाण में भीड़ अधिक बढ़ती हुई देख, श्री अण्णा साहेब खापर्डे की प्रेरणा से "शांति-निकेतन लॉज" नामक नये लॉज की स्थापना हुई। इस नवीन लॉज में डॉक्टरजी का विशेष अगुआपन था। विभिन्न भागों से आये हुए अनेक बुद्धिमान, साहसी और देशभक्त तरुण वहां एकत्रित हुए थे। "शांति-निकेतन" की युवक मंडली का दबदबा न केवल कालेज में, अपितु शहर में भी छाया था। क्या आश्चर्य, यदि समवयस्क और समान वृत्ति वाले तरुणों के इकट्ठे होने पर हास्य विनोद, चर्चा और अन्य उत्साही कार्यक्रमों के कारण शांति-निकेतन में सदा चहलपहल का दृश्य दिखाई पड़ने लगा। वहां कार्यक्रम ऐसे ही होते थे जिनसे राष्ट्रीय

शांतिनिकेतन लॉज

वृत्ति का परिपोषण हो और वहां का वातावरण भी इसी के अनुकूल रहा करता था। यह तो मानी हुई बात थी कि डॉक्टरजी हर कार्यक्रम में अगुआ होते थे। डाक्टरजी का उस काल का विद्यार्थी-जीवन स्वदेशी आंदोलन के प्रभावशाली प्रचार में बीता। उन्होंने सैकड़ों नवीन युवक कार्यकर्ताओं को मित्र बनाया, अपने कार्यक्षेत्र का खूब विस्तार किया और अनेक आन्दोलन और उपक्रम शुरू किये।

कलकत्ते की बंगाली जनता के द्वारा किये जाने वाले प्रायः सभी कार्यों और आन्दोलनों में वे अदम्य उत्साह से शामिल होते थे। हरएक राष्ट्रोद्धारक आन्दोलन में वे उत्साहपूर्वक भाग लेते थे।

बंग जीवन से तादात्म्य

कलकत्ते के अनेक प्रमुख बंगाली नेताओं और कार्यकर्ताओं से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। प्रांतीयता की संकुचित भावनाओं को तिलांजलि देकर, एक राष्ट्रीयत्व के विशाल विचारों से डॉक्टरजी ओत-प्रोत थे। इसलिये वे बहुत जल्दी बंग जीवन में घुल-मिल गये। बंगाली समाज में एक रूप होकर कार्य कर सकने के लिये उन्होंने बंगीय वेश-भूषा और भाषा अपनाई और शीघ्र ही धारावाही रूप में बंगाली बोलने में सफल होगये। आजकल भी उनकी जब किसी बंगाली स्वयं-सेवक से भेंट होती थी तो वे बंगाली में ही बातचीत करने का ध्यान रखते थे। डॉक्टरजी प्रांतीयता के विषैले भावों से ऊँचे उठे हुए थे, इसीलिये कलकत्ते में बाबू श्यामसुन्दर चक्रवर्ती प्रभृति लोगों का उनके प्रति आत्मीय भाव था। सरकारी कोप के शिकार बने हुए कई निर्वासित बंगाली युवकों के निर्वाह का खर्च डाक्टरजी ने अपने जिम्मे लिया था और अनेक निःसहाय बंगाली परिवारों की वे आत्मीय भाव से हर प्रकार की सहायता तत्परता से किया करते थे। जिस समय दामोदर नदी की भीषण बाढ़ के कारण हजारों बंगाली कुटुम्ब निराधार हो गये, उस समय डॉक्टरजी ने श्री रामकृष्ण आश्रम की ओर से निराश्रितों की मदद करने में अथक प्रयत्न किये। सारांश यह, कि अपने सारे देश-बांधवों के प्रति डॉक्टरजी की एकसी आत्मीय वृत्ति थी। लोग चाहे जिस प्रांत के हों, पर उनकी दीन

दशा से द्रवित होकर, बन्धुभाव से डॉक्टरजी उनकी सहायता करने दौड़ पड़ते थे। डॉक्टरजी ने हमें यह सबक सिखाया है कि हम हिन्दू-मात्र के सुख-दुःखों को अपना सुख-दुःख समझें। पहिले स्वयं इस प्रकार का आचरण करके बाद में ही उन्होंने दूसरों को उपदेश दिया।

ध्येयवादी जीवन

डॉक्टरजी के इन विभिन्न कार्यों के विस्तार को देखते हुए यदि पुलिस इनके पीछे न लगती तो आश्चर्य की बात होती। सी. आई. डी. की दृष्टि तो इन पर तभी से थी जब कि वे नागपुर में नील सिटी हाई स्कूल के विद्यार्थी थे। इस झंझट और सार्वजनिक कार्यों को संभालते हुए डॉक्टरजी ने अनेक विषयों में प्रावीण्य संपादन कर एल. एम. एन्ड एस. की परीक्षा उत्तम रीति से पास की। इनकी यह निश्चित राय थी कि कार्यकर्ता को समाज में विश्वास और सम्मान का स्थान प्राप्त करा देने में अन्य बातों के साथ साथ शैक्षणिक योग्यता भी आवश्यक गुण है। डॉक्टरजी सदा इस बात पर जोर दिया करते थे कि संघ के कार्यकर्ता गण इस पहलू की उपेक्षा न करें। विद्यार्थी जीवन में उग्र देश भक्ति की तड़क भड़क दिखाकर बाद में पढ़ाई के साथ ही विद्यार्थी जीवन के अपने ध्येयवाद को भी निर्लज्जता-पूर्वक तिलांजली देने का स्वार्थनिष्ठ असंगत व्यवहार उन्होंने नहीं किया। वे "डॉक्टर" हुए पर "डॉक्टरी" कभी न की। बचपन में निश्चित किये हुए राष्ट्रोद्धार के ध्येय का उन्होंने जीवन के अंतिम क्षण तक त्याग नहीं किया। ध्येय-सिद्धि के लिए आजीवन संग्राम करते रहे और अपने जीवन सर्वस्व को होम दिया।

वैवाहिक कर्तव्य-पूर्ति के लिए

डॉक्टरजी ने अपने जीवन-ध्येय के अनुरूप ही अपने जीवन की रूपरेखा निश्चित की और उसमें किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न होने दी। इसी हेतु डॉक्टरजी ने आमरण विवाह नहीं किया। उन्हें यह स्पष्ट दीख रहा था कि वैवाहिक कर्तव्य से श्रेष्ठ, अन्य महान कर्तव्य उनकी बाट देख रहा है। इसी को निबाहने में उन्हें अपने आयुष्य की पाई-

कता प्रतीत होती थी। वे किसी भी प्रकार के व्यक्तिगत या प्रपंच-विषयक मोह से अपने मन को नियत कर्तव्य से तिल मात्र भी विचलित होने देना न चाहते थे। इसलिये मन ही मन उन्होंने आजन्म ब्रह्मचारी रहने की भीष्म प्रतिज्ञा की। डॉक्टरजी को यह बिलकुल पसन्द नहीं था कि लोग पहिले तो तरह तरह की सांसारिक झंझटें पैदा करलें और फिर उनसे खींचातानी करते रहें या अपने ध्येयों से प्रतारणा करें। उनका ऐसा विचार था कि युवावस्था का साहस, कर्तृत्व और त्याग वृत्ति अपने स्वीकृत कार्य के लिये ही सुरक्षित रहे तथा संसार के चक्र में फंसकर जीवन निरुत्साही, निराशा-वादी, स्वार्थी तथा दीन वृत्ति का न होने पाये। यही बात उनकी उपजीविका के विषय में थी। अपने जीवन ध्येय के प्रति अमर निष्ठा रखने का तो उनका दृढ़ संकल्प था। इसी काम में दिन के चौबीसों घण्टे भी उन्हें अल्प ही प्रतीत होते थे; फिर पेट भरने के लिए अलग समय निकालने की कल्पना उन्हें क्योंकर छू पाती ? पर यही कहना होगा कि ईश्वरीय-कार्य की धुन में तन्मय रहने वाले इस श्रेष्ठ पुरुष की आजीविका निबाहने का जिम्मा स्वयं भगवान ने ले रक्खा था। हाथ सदा तंग रहता था। आर्थिक चिन्ता बनी रहती थी। पर वे हताश कभी न हुए। इतना ही नहीं, उन्होंने औरों को अपनी गरीबी का पता तक न लगने दिया। परमपूज्य भगवे ध्वज के सामने हर वर्ष गुरु-दक्षिणा के "पत्रं पुष्पं" १०१) रु० रखते हुए उन्हें अवश्य अपनी अल्प शक्ति का अनुभव कर अपार दुःख होता था।

राष्ट्रीय पतन के मूल कारण का शोध

१९१५ से १९२४ तक उनके दस वर्ष देश में चलने वाले अनेक आन्दोलनों और संस्थाओं के निरीक्षण, अध्ययन और विश्लेषण में तथा राष्ट्र की बीमारी का अचूक निदान खोजने में बीत गये। हमारी मातृभूमि हिन्दुस्थान न केवल भूमि, क्षेत्रफल, जनसंख्या, सृष्टि सौन्दर्य, खनिज संपत्ति, उर्वरता और बहुलता में, अपितु तत्वज्ञान, धर्म, संस्कृति, इतिहास, पराक्रम, विद्वता, कला कौशल्य आदि हर एक बात में कभी भी दुनिया में पिछड़ी न रही, न आज भी पिछड़ी है। फिर

किस राष्ट्रीय दुर्गुण के कारण यही प्राचीन हिन्दू राष्ट्र अधोगति के गढ़े में फंसता ही जा रहा है ? सदा यह प्रश्न डॉक्टरजी के मन को बेधा करता था उन्होंने देखा कि बड़े २ राष्ट्रीय नेताओं को इस प्रश्न का अचूक उत्तर नहीं मिला और फलतः जो पगडंडी उनकी नजर में आई उसी पर राष्ट्र को अपने पीछे घसीटने का प्रयत्न कर रहे हैं। डॉक्टरजी की विवेचक बुद्धि को इनमें से कहीं भी समाधान प्राप्त न हुआ। इसीलिये राष्ट्र-हित बुद्धि से सभी आन्दोलनों में भाग लेते हुए भी वे अपने उपरोक्त प्रश्न का सही उत्तर ढूंढने में तन्मय रहते थे।

मातृभूमि की गुलामी के कारण निरन्तर जलने वाला उनका मन विदेशी सत्ता को देखकर उद्विग्न हो उठता था। सन् १९२० की नागपुर की कांग्रेस के बाद के उनके सार्वजनिक भाषण अत्यन्त उग्र और सम्पूर्ण स्वातंत्र्यवादी हुआ करते थे। १९२१ में जब सरकार ने उन पर मुकदमा चलाया तब कोर्ट में अपने कार्य का समर्थन करते हुए जो भाषण उन्होंने दिया वह निर्भीक और मुंहतोड़ इस नाते से प्रसिद्ध है। उनके अंतःकरण से धधकने वाली ज्वाला की चिनगारियां इस भाषण में इतस्ततः दिखाई पड़ती हैं।

कटु अनुभव

सन् १९२० के पहिले गरम दलकी राजनीति में और सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन में उन्होंने आवेश से भाग लिया। अनेक संस्थाओं का निरीक्षण और परीक्षण किया। सार्वजनिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रवेश कर वहां दिखाई पड़ने वाली विविध मनोवृत्तियों को बारीक निगाह से देखा और स्वयं अनुभव की कसौटी पर कसा पर उनका सात्विक और उदार अंतःकरण निराश हो गया। उन्होंने क्या देखा ? जिधर नजर पड़ी उधर उन्हें दिखाई पड़ी उत्कृष्ट मनों की आत्मवंचना, सच्चे दिलों की क्रियाहीन तड़फन, कर्तव्याकर्तव्य की अनिश्चितता, व्यक्तिगत बड़प्पन की लालसा, स्वयंभू नेताओं की स्वार्थी वृत्ति, अन्धश्रद्धालु जीवों का फंसाया जाना और विभिन्न पक्षों की लज्जास्पद तू-तू मैं-मैं की गंदगी में सड़ता हुआ सामाजिक जीवन। यह सब देखकर डॉक्टरजी का मन ऊब गया।

परिस्थिति इतनी भीषण हो चली थी कि स्वराज्य, राष्ट्रीयत्व, हिंदू, शत्रु और मित्र आदि शब्दों के अर्थ का भी विपर्यास होने लगा था। अतः इन सारी कल्पनाओं का यथार्थ स्वरूप विशद करने के लिये और हिन्दुस्थान के विशुद्ध स्वातंत्र्य का प्रचार करने के लिये डॉक्टरजी ने नागपुर से " स्वातंत्र्य " नामक दैनिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इसके संपादकों में मुख्यतः स्व० अच्युतराव कोल्हटकर, श्री विश्वनाथ राव केलकर वकील आदि लोग थे। इस पत्र द्वारा इन्होंने प्रचार कार्य जारी रखा परन्तु डाक्टरजी के सम्पादन काल में ही इस पत्र पर सरकार की कोप दृष्टि हुई और पत्र बन्द करना पड़ा।

निराशाजनक परिस्थिति

इस समय आस पास की स्थिति अत्यन्त निराशाजनक दिखाई पड़ती थी। राजनैतिक नरम गरम सभी दल कुंभकरणी नींद में या इधर उधर की बेकार बातों में या चुनाव की चख चख में फंसे थे, साहित्यिक जगत तो साहित्य और ललित कलाओं की लहरों में डूब रहा था और उपेक्षित युवक वर्ग मोहक विलासी जीवन की रंगरेलियों और फैशन में चूर था। गोरक्षण, अनाथाश्रम, महिलाश्रम, उद्योग भवन आदि अनेक संस्थाओं की धूम थी और अखाडों, व्यायामशालाओं, सभाओं, संस्थाओं और मंडलों की तो बाढ़ सी आगई थी। डॉक्टरजी की समझ में ही नहीं आता था कि चारों ओर के संकटों से ग्रस्त, गुलामी की जंजीरों में जकड़े हुए भारत की रक्षा करने और उस पर छत्रछाया करने को लालायित इन संस्थाओं के अस्थायी, अपूर्ण और अधूरे उपायों से राष्ट्र का दुर्भाग्य कैसे नष्ट किया जा सकेगा। वे क्योंकर विश्वास कर लेते कि ऊपरी मरहम पट्टी या बाह्योपचारों से राष्ट्र के रोग-जन्तुओं का समूल नाश होसकेगा? डॉक्टर ही ठहरे।

इस निराशाजनक स्थिति का अवलोकन कर तथा उसके कड़वे स्वाद को चख कर उनका मन नया मार्ग खोज निकालने में लगा। इतने दिन के अपने निकटवर्ती सहयोगी मित्र-परिवार के अनुभव से एक अभिनव तत्व उनके अन्तःकरण में उत्पन्न हुआ। और यही तत्व आगे चल कर उनकी

आशाओं का मन्दिर बन गया। देशाभिमानी, विश्वासपात्र मित्रों के प्रेमपूर्ण अंतःकरणों की अभेद्यता ही वह तत्व था। अन्तःकरणों में ऐक्य भाव उत्पन्न होकर एकमेक को स्वदेश-बांधव समझते हुए, जो परस्पर प्रेम किया जाता है, वह एक अमोघ शक्ति है। अपने अनुभवों के फल स्वरूप डॉक्टरजी का यह दृढ़ विश्वास होगया कि इस शक्ति के विराट दर्शन से दुर्बल राष्ट्र प्रबल हो सकता है। त्याग और प्रेम की निस्सीम वृद्धि हो सकती है। ये जितनी बढ़ेगी उसी प्रमाण में कार्य भी हुए बिना नहीं रह सकता। मनुष्य का केवल दृष्टिकोण बदल कर उसके अंतःकरण में त्याग-भावना का बीज बोने की आवश्यकता है। बाद में यह कहना ही नहीं पड़ता कि तू अमुक कार्य कर। यदि तीव्र लगन वाला एक अंतःकरण दूसरे स्वच्छ और निष्पाप अंतःकरण में भी वैसी ही आग पैदा करता जाय तो ऐसे हजारों लाखों निश्चयी, स्वदेश भक्तों की अभेद्य रक्षापंक्ति निर्माण कर परकीय समाजों के नाना प्रकार के आक्रमणों को सहज में निष्फल बनाया जा सकता है। डॉक्टरजी का यह विश्वास उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। वर्तमान काल के नाना प्रकार के पक्षों के कारण सड़ने वाले, मतमतान्तर के कीटाणुओं से भरे हुए, अखबारी राजनीति के मोह में फसे हुए, उत्साह हीन और पराक्रम शून्य सामाजिक जीवन में जो भी शुद्ध और निस्वार्थी अंतःकरण मिले, उन्हीं का अभेद्य और एक सूत्री संगठन तैयार करने के महान प्रयास के लिये डॉक्टरजी उद्यत हुए। यह आत्म-विश्वास उत्पन्न होने भर की देर थी कि यही एकमेव कार्य राष्ट्र को अंत में विजयी बनायेगा फिर तो उनकी आत्मा की एकमेव लालसा यह हो गई कि जीवन का हर एक क्षण इस कार्य में लगे। यही हो गई उनकी अमर धुन।

हिन्दू राष्ट्रीयत्व के तारक सूत्र

उनकी विचार धारा में यह सिद्धान्त बहुत दिनों से अग्र स्थान प्राप्त कर चुका था कि हिन्दुत्व ही भारत का वास्तविक राष्ट्रीयत्व है। वे अच्छी तरह जानते थे कि हिन्दुस्थान आज गुलाम राष्ट्र है और उसका अधःपतन चरमसीमा को पहुंच चुका है। फिर भी उनके हृदय में इस श्रद्धा का पौधा बड़ी तेजी

से बढ़ रहा था कि अंत में हिन्दू राष्ट्रीयत्व का सूत्र ही इस पतित भारतवर्ष का उद्धार कर सकेगा। डॉक्टरजी का अंतःकरण हिन्दू राष्ट्र के प्रगतिशील समुदाय की 'चतुर गुलाम' कहलाने में आनन्दित और गर्वित रहने की मनोवृत्ति को देख-देख कर टूक-टूक हुआ करता था। उनकी अभिलाषा यह थी कि हिन्दू मात्र के हृदय में यह भाव जागृत हो उठे कि हम इस महान हिन्दू राष्ट्र के घटक हैं। यह कार्य था अत्यन्त कठिन क्योंकि समाज में दीख पड़ती थी कुंभकर्णी नींद। उन्होंने यह अच्छी तरह पहचान लिया कि कभी कभी लगने वाले इक्के दुक्के धक्कों से समाज-पुरुष इस कुंभकर्णी नींद में से जाग नहीं सकता। उन्होंने यह दुहरा कार्यक्रम निश्चित किया कि एक ओर तो समाज में जागरण उत्पन्न करने का कार्य अखंड चालू रखा जाये और दूसरी ओर जिन जिन समाज घटकों की आंखें खुल चुकी हैं उन्हें अभेद्य संगठन के सूत्र में पिरोया जाये। इस प्रचंड राष्ट्रोद्धारक कार्य की जिम्मेवारी उन्होंने स्वयं स्फूर्ति से अपने सिर पर ली और इसी कार्य में अपना सारा जीवन बिताने का अपने मन में संकल्प किया। हिन्दूराष्ट्र के पुनरुत्थान के अपने दिव्य स्वप्न को सत्य सृष्टि में परिणित कर सकें-मातृभूमि के उस दिव्य रूप की झांकी देख सकें जबकि उसका गत वैभव फिर उसके चरणों पर लोटने लगे-इसी पार्थिव शरीर से, इन्हीं पार्थिव नेत्रों से राष्ट्र मोचन के दिव्य उत्सव का दर्शन कर सकें, यही थी उनकी सर्वोच्च महत्वाकांक्षा! यही उनके जीवन का एकमेव लक्ष! इतिहास में सीखा हुआ एकमेव सबक! और मन ही मन उस मंगलकारी ध्येय का जप करते हुए उसकी पूर्ति के लिये जन्म भर सतत उद्योग करते रहने का उन्होंने उग्र निश्चय किया। यह तो बिना लिखे ही विदित होगया होगा कि इसी निश्चय के गर्भ में से आगे चलकर **राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ** का जन्म हुआ है।

अंत में उन्होंने यह निश्चय किया कि परिस्थिति चाहे जितनी विपरीत हो, मुझे जिस कल्पना की स्फूर्ति मिली है, उसे कार्यरूप में परिणत मुझे ही करना चाहिये। और संवत १९८१ की विजया दशमी के शुभ

राष्ट्रीय संगठन का उदय

मुहूर्त में उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का बीजारोपण किया। उन्होंने मानों फिर इस चिरंतन सत्य का दिग्ददर्शन कराया कि राष्ट्र का सच्चा चैतन्य और बल ध्येयनिष्ठ युवकों के प्रभावी संगठन में हुआ करता है। हिन्दू राष्ट्र की सारी छिपी हुई और सोई हुई शक्ति को प्रकट एवं जागृत करने का महान् कार्य उन्होंने सफलतापूर्वक कर दिखाया। प्रखर ध्येयनिष्टा, निर्मल अंतःकरण, असीम आत्म विश्वास और अनुपम संगठन-कौशल्य तो मानो उन्हें ईश्वरीय देन थे। इसके अतिरिक्त और कोई भी साधन या सहारा न था। उन्हें न तो किसी सुप्रसिद्ध नेता का समर्थन प्राप्त था न कोई धनकुबेर ही उनके हाथ में था और उस समय की परिस्थिति की प्रतिकूलता तो सर्व विदित ही है। उस समय "हिन्दुस्थान हिन्दुओं का है" इस तरह घोषणा करने की तो बात ही कहां ? खुद को गौरवपूर्वक 'हिन्दू' कहना महापाप माना जाता था। समीप किसीभी प्रकारकी साधन-सामग्री न थी। इन अभावों के होते हुये भी एक बात महत्वपूर्ण थी और वह थी इस तेजस्वी महापुरुष का सत्व; और इसी कारण वे कार्यसिद्धि का मार्ग साहसपूर्वक पार कर सके। निम्न संस्कृत सुभाषित के तो डॉक्टरजी मूर्तिमान स्वरूप थे—"**क्रिया सिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे।**"

ऊपर निर्दिष्ट की हुई बिल्कुल प्रतिकूल परिस्थिति में भी डॉक्टरजी ने साहसपूर्वक कार्य का प्रारम्भ किया। लोग कहा करते हैं—"**सर्वारम्भास्तण्डुलाः प्रस्थ मूलः।**" पर डॉक्टरजी ने इस

मोहिते के उस नष्टप्राय बाड़े में

सिद्धान्त को ताक पर रखकर बिना तण्डुल (धन) के ही कार्यारम्भ कर दिया। उनको इसमें तो कभी संदेह ही न था कि यदि मनुष्य का दिल उदार हो तो फिर धन की कमी हो ही नहीं सकती और इसीलिये पैसे एकत्रित करने के चक्कर में न पड़ते हुए सारे जीवन भर उन्होंने सच्चे अंतःकरण वाले मनुष्यों को एकत्रित करने का प्रयत्न किया। और ऐसे हजारों लोगों को भगवे ध्वज के नीचे संगठित करने में लोकोत्तर यश सम्पादन किया। प्रारम्भ काल

में कार्य धीरे-धीरे बढ़ा, पर वृद्धि सतत और निश्चित रूप से होती गई। आज पांच, कल आठ इस गति से संघ-कार्य बढ़ता ही गया। उस काल में डॉक्टरजी का ध्यान संख्या बढ़ाने की अपेक्षा उत्तम हृदयों के निर्माण में अधिक रहा। वे इस बात पर अधिक जोर देते थे कि जो लोग हमें प्राप्त हो चुके उनके दिल दिनोंदिन अधिकांधिक निष्ठावान और कार्यप्रवण होते जावें। उन्हें बक बक करने वाले आन्दोलक या लेखन-कलाप्रवीण शब्द-शूरों का निर्माण नहीं करना था। उन्हें तो वज्र के समान अंतःकरण वाले और फौलादी भुजाओं वाले संगठन-कुशल कर्मवीर चाहिये थे। मोहिते-बाड़े के उन टूटे-फूटे खंडहरों में खेलने वाले छोटे से उदयोन्मुख संघ के उन स्वयंसेवकों की अटूट ध्येयनिष्ठा, अतुल बन्धुभाव, साहसी वृत्ति और अदम्य उत्साह देखकर डॉक्टरजी को—यद्यपि वे स्वयं युवावस्था की सीमा को पार कर रहे थे—भारतवर्ष की उज्ज्वल भाग्यरेखा अधिक स्पष्ट और निश्चित दिखाई पड़ना स्वभाविक था।

एक बोध प्रसंग

संघ-स्थान पर हर एक की दैनिक उपस्थिति पर उनका बहुत जोर था। उस समय के ९९ स्वयंसेवकों में हर रोज पूरे ९९ उपस्थित रहा करते थे। विशेषतः इतवार की परेड के बारे में तो यह बन्धन था कि स्वयंसेवक यदि आस-पास किसी गांव को भी गये हों तो उस परेड में उपस्थित होने के लिये लौट आयें। इस बारे में एक प्रसंग का विशेष रूप से स्मरण हुआ करता है इसलिये उसका उल्लेख कर देना उचित होगा। डॉक्टरजी को एक बार किसी कारणवश शनिवार के दिन कतिपय स्वयंसेवकों के साथ अड़ेगांव जाना पड़ा। यह गांव नागपुर से ३२ मील की दूरी पर है। वहीं शाम हो गई। अड़ेगांव नागपुर-अमरावती की पक्की सड़क से ९-१० मील की दूरी पर बसा है। वहां से अंधेरे में चलते हुए डॉक्टरजी अपने साथियों सहित बजार गांव पहुंचे जहां से आगे सड़क पक्की थी। उनका दृढ़ निश्चय था कि कल की परेड में अवश्य नागपुर में उपस्थित रहेंगे। पर रात अधिक हो जाने के कारण मोटर या अन्य सवारी का प्रबंध होना संभव न था।

डॉक्टरजी ने चट पैदल चलना शुरू कर दिया। रात अंधेरी, रास्ते में कीचड़ और पैर मिट्टी में सने हुए, तिस पर पैर में एक कांटा गहरा चुभा हुआ। इतनी दूर की पैदल यात्रा धीरे-धीरे करना भी त्रासदायक होती। परन्तु कीचड़ के समान आपत्तियों में भी निःशंक घुसकर पार होने की उनकी आदत सी हो गई थी। उन्हें तो पूर्ण कल्पना थी कि संघ का मार्ग इसी तरह ऊबड़ खाबड़ होगा और उसमें कदम-कदम पर कांटे बिछे होंगे। इसलिये वे तेजी से आगे बढ़ते ही गये। साथियों ने कोशिश की कि उनका निश्चय बदल सकें पर निष्फल रहे। डाक्टर जी को एक ही धुन थी-मुझे प्रातःकाल ५॥ बजे परेड के लिये संघ स्थान पर उपस्थित होना ही चाहिये। रातों रात इस तरह ३२ मील की पैदल यात्रा करते हुए नागपुर जा पहुंचने की उनकी हिम्मत देखकर साथियों के मन "धन्य! धन्य!" कह उठे। रात के १०॥ बजे यात्रा शुरू हुई। पर संकटों ने अधिक देर तक इन लोगों की परीक्षा न ली। दयामय भगवान शायद इनके साहस को ही परखना चाहते थे। डॉक्टरजी इस कसौटी पर खरे उतरे। कुछ मील पैदल चलने पर उसी रास्ते नागपुर जाने वाली एक मोटर मिली, जो खचाखच भरी हुई थी। परन्तु ड्राइवर ने डॉक्टरजी को पहचानकर गाड़ी खड़ी की और उन्हें अंदर बिठा लिया। अंदर जगह बिल्कुल न होने के कारण उनके साथियों को येन-केन-प्रकारेण मोटर के पैरदानों पर खड़ा रहना पड़ा और सबको ले देकर मोटर रात में २॥ बजे नागपुर पहुंची। निश्चयानुसार डॉक्टरजी, प्रातःकाल संघ स्थान पर परेड में शामिल हो सके।

जब तक डॉक्टरजी के स्वास्थ्य ने साथ दिया डाक्टरजी नागपुर में या बाहर—जहां कहीं भी वे हों—स्थानीय संघ स्थान पर अवश्य पहुंचते थे। जब बिछौनाही पकड़ना पड़ता तब तो लाचारी थी।

शिक्षा का फल

सन् १९३० के सविनयअवज्ञा आन्दोलन के दिन थे। चारों ओर सभाओं, जुलूसों, प्रभात फेरियों और हुल्लड़बाजी की धूम थी। गंभीरता और लगन से काम करने वाले युवकों के मन भी आन्दोलन के कारण विचलित होने लगे।

उस समय एक संघ-शाखा की उपस्थिति घटते घटते शून्य तक पहुंच गई। सब तरह से निराश होकर वहां के संघचालक महोदय ने डॉक्टरजी की राय पूछी कि क्या किया जाय? डॉक्टरजी ने निःसंदिग्ध शब्दों में उत्तर दिया, "दूसरे आयें चाहे न आयें आप अकेले चार महिने तक नियमित रूप से ठीक समय संघस्थान पर ध्वज लगाकर बैठ जाईये और नियमानुसार प्रार्थना करते जाईये। इस कार्यक्रम में एक दिन का भी खंड ना पड़े। आप निष्ठापूर्वक केवल इतना ही करें फिर आप को इस अवधि में अपने पीछे कई निष्ठावान स्वयंसेवक प्रार्थना के लिये खड़े दिखाई पड़ेंगे"। और हुआ भी ऐसा ही। उन संघचालक जी को पूरा एक महीना भी बाट न देखनी पड़ी। उसी माह के मासिक वृत्त में उन्हें यह लिखना पड़ा कि शाखा की उपस्थिति १५० से भी अधिक हो गई है।

शत्रु की अपेक्षा मित्र ही अधिक बाधक

काम करने वाले कार्यकर्ता ही जानते हैं कि संघ के बढ़ते हुए पौधे की रक्षा और संवर्धन करने में कितनी तकलीफें होती हैं और किस तरह खून का पानी करना पड़ता है। प्रारंभिक काल में संघ के अनेक सच्चे हित-चिंतकों की भी संघ के बारे में तरह तरह की गलत धारणायें थीं। किसी का ख्याल था कि संघ एक अखाड़ा है, कोई इसे सेवा समिति या बालचर दल समझता था। कई सज्जनोंने तो आत्मीयता और घनिष्ट सम्बन्धों का दावा करते हुए यहां तक आग्रह किया कि उनके यहां की शादियों और बरातों की शोभा में चार चांद लगाने के लिये स्वयंसेवक और संघ का बैंड अवश्य ही मिले। कई चतुर-शिरोमणियों ने संघ को गोला बारूद और शस्त्रास्त्र इकट्ठा करने वाला क्रांतिकारी दल सिद्ध कर, छुट्टी पाली। संघ के यथार्थ स्वरूप के बारे में लोगों में इस तरह के भयानक अज्ञान को फैला हुआ देख कर डॉक्टरजी को अत्यन्त दुःख होता था। ऐसे लोगों को देख कर कभी दया आती थी, कभी हंसी। वास्तव में डॉक्टरजी ने संघ के उत्सवों में अपने व्याख्यानों द्वारा संघ की आवश्यकता, ध्येय और नीति स्पष्ट शब्दों में प्रगट करने का मौका कभी हाथ से न

जाने दिया। तो भी दुर्भाग्य से संघ के हितशत्रुओं की अपेक्षा हितचिंतकों को ही संघ के अर्थ और उसके एकमेव कार्य की स्पष्ट कल्पना जानने में अधिक समय लगा। इसे भी हिन्दू राष्ट्र का दुर्दैव ही कहना चाहिये।

संघ के जन्म काल से ही संघ की सारी हलचलों को आंख फाड़ कर देखने वाली मध्यप्रांतीय सरकार ने सन् १९३२ में खानगी सरक्यूलर निकाल कर सरकारी नौकरों को संघ में भाग लेने की सख्त मनाई करदी।

सारी आपत्तियां इष्टापत्तियां ही सिद्ध हुईं

और सरकार की नकल करते हुए हमारी जिला-कौंसिलों, म्युनिसिपालटियों आदि अन्य शिक्षण-संस्थाओं ने भी अपने कर्मचारियों, उनके रिश्तेदारों और विद्यार्थियों के संघ में जाने पर रुकावट लगादी। मानों सरकारी नौकरों का स्वधर्मनिष्ठ रहना आवश्यक ही नहीं। अपनी संस्कृति और समाज के ऋणको चुकाने की जिम्मेदारी ही उन पर न हो। पर सद्भाग्य से ये सारी आपत्तियां संघ के लिये वरदान सिद्ध हुईं। सब तरह की अग्नि परीक्षाओं में तप कर संघ का तेज और भी अधिक दमक उठा। सरकारी सरक्यूलर के प्रश्न को लेकर प्रांतीय धारासभा में बड़ी गरमागरम बहस हुई और इसी प्रश्न पर तत्कालीन शरीफ मंत्रीमंडल का पतन हुआ। संघ के सारे शत्रु और पीठ पीछे नुकता चीनी करने वाले हतबल होगये। संघ की विचारधारा और कार्य-पद्धति सारे झंझटों से टक्कर ले सकी। इसके पश्चात संघ कार्य मध्यप्रांत में और मध्यप्रांत के बाहिर तेजी से बढ़ने लगा। संघ की नौका के समर्थ और कुशल कर्णधार थे स्वयं डॉक्टर जी। तत्व के मामले में किंचित भी च्युत न होते हुए अनेक तरह के झमेलों, जटिल प्रश्नों, विकट प्रसंगों और आन्दोलनों के तूफानों का सामना करते हुए चट्टानों और भंवरों से बचातेहुए संघ नौका को चतुराई से खेना वे जानते थे। फिर संघ का मार्ग कौन रोक सकता था?

संगठित जीवन ही सजीव समाज की स्वाभाविक स्थिति है। यह तो स्पष्ट हो ही गया था कि संगठन किये बिना किसी भी प्रकार के कार्य से, प्रचार से, आंदोलन से या पतंगे के समान जलकर आत्मा-

संघ कार्य ही उनका जीवन कार्य था

हुति देने से राष्ट्र के अंतिम उद्देश्यों को सिद्ध नहीं किया जासकता। अतः डाक्टरजी ने संघ कार्य को ही अपना जीवन कार्य मान लिया। संघस्थापना के बाद की उनकी हर एक सांस संघ-कार्य में ही खर्च होती थी। रक्त के एक एक बूंद से सींचकर अपने जीवन की खाद से भूमि को उर्वरित कर भारतीय उद्यान में डॉक्टर जी ने संघ रूपी मनोहर लताकुंज पैदा किया। चतुर माली के समान उन्होंने लगन और कुशलता पूर्वक बागवानी की और उन्हीं के असीम प्रयत्नों के कारण बहार आई। लता कुंज की डाल डाल पर खिले हुए पुष्पों की मीठी सुगन्ध से राष्ट्रीय उद्यान महक उठा। उन्होंने धीरे धीरे अन्य सभी झंझटों से अपने को मुक्त कर लिया और अपनी सारी शक्तियां संघ-कार्य में लगादीं। सभा-सम्मेलनों, चुनावबाजी और दलबन्दी की राजनीति को तिलांजलि दी। उन्हें सब ओर अनुभव हुआ ही था कि शाब्दिक तत्वचर्चा, बेकार बहस और वितण्डावाद और चारों ओर गूंजने वाले क्षुद्र वादों से समाज में फूट बढ़ती है और भ्रम का निर्माण होता है। इनसे किसी तरह का सार नहीं निकलता। इसीलिये सावधानी-पूर्वक इस व्यर्थ कार्य की तू तू मैं मैं से वे दूर रहते थे।

डॉक्टरजी की दिनचर्या सब को मालूम ही है। सुबह जागने से लेकर रात में बिछौने पर लेटकर आंख लगने तक उनकी हर घड़ी अपने लिये नहीं, संघ कार्य में बीतती थी। जिस तरह प्रतिभाशाली कलाकार पत्थर से मूर्ति तैयार करने में तन्मय हो जाता है, उसी तरह कार्यकर्ताओं से बातचीत करते हुए मानों हथौड़ा-छेनी से नक्काशी करते हुए—निष्ठावान् अन्तःकरण तैयार करने में ही उनका अधिकांश समय बीतता था। संघ सम्बन्धी समाचार पढ़ने के अलावा समाचार-पत्र पढ़ने तक की फुरसत निकालना उन्हें कठिन प्रतीत होती थी। निशाना लगाने में जैसे दृष्टि की एकाग्रता चाहिये, उसी प्रकार स्वीकृत कार्य को सफल करने के लिये भी अपनी सारी मानसिक और शारीरिक शक्तियों का उसी

संघ मय दिन चर्या

कार्य में केन्द्रीकरण आवश्यक होता है। यही सोचकर उन्होंने एकमेव संघ कार्य के लिये अपना जीवन लगा दिया, यद्यपि इसी कारण उन पर " एकान्तिकता " का आक्षेप भी कुछ लोगों ने किया। उनका विश्वास था कि उनके यहां जो भी आयेगा वह संघ कार्य के लिये ही। बिना मुलाकात उसके लौटने की कल्पना उन्हें कैसे सहन होती ? इसलिये भोजन के समय भी अपनी थाली रसोईघर के दरवाजे के पास ही लगवाते थे। फलतः भोजन के समय भी लोगों का आना-जाना बे रोकटोक जारी रहता था। उनके कमरे के जीने के प्रवेशद्वार पर उनके नाम की तख्ती टंगी रहती थी। डॉक्टरजी का कड़ा आदेश था कि उस पर सदा यह निर्देश रहे कि "मुलाकात हो सकती है।" उनकी बैठक में खुले तौर पर तब चर्चा तो कदाचित ही होती। स्थान-स्थान के दौरों के वर्णन, संघ-स्थापन के पूर्व की राजकीय घटनाओं के वर्णन, जेल के और अन्य व्यक्तिगत अनुभव, समकालीन महान विभूतियों के जीवन में से स्मरणीय प्रसंगोंकी चर्चा आदि विषयों पर बातें चला करती थीं। सारी बातचीत प्रसंगोचित, आनंददायक, उत्साहवर्धक और शिक्षाप्रद होती थी। बीच बीच में हास्य विनोद भी खूब हुआ करता था। इस कारण बैठक में आने वालों के चेहरे सदा हंसमुख रहते थे। बैठक सदा भरी रहती थी। वहां निराशा, ऊबने या थकावट का तो नामोनिशान तक नजर न आता था। इसीलिये डाक्टरजी की कोई भी बैठक घंटों चला करती थी। सबसे अधिक तारीफ की बात तो थी उनकी आश्चर्यजनक स्मरण शक्ति। चाहे जहां का स्वयंसेवक हो, यदि एक बार उनकी बैठक में आ गया तो फिर वे उसका नाम सहसा नहीं भूलते थे। कभी कभी दौरों में बचपन के मित्र, सहपाठी या साथी से भेंट हो जाती। वे लोग डॉक्टरजी से पूंछ बैठते "हमें पहचाना ?" और डॉक्टरजी किंचित निरखकर उनका नाम सही बता देते।

डॉक्टरजी की रहन सहन कितनी सादगी की थी। पर-प्रांतीय लोग तो देखकर दांतों तले अंगुली दबाते थे। और सर्वत्र ऐसे आश्चर्यो-

द्गार निकलना स्वाभाविक ही था, क्योंकि नेता के बारे में—कम से कम अन्य प्रांतों में—कल्पनाएं भिन्न होती हैं।

सादी रहन सहन

डॉक्टरजी सफर तो करते थे तीसरे दर्जे में, और बड़े छोटे सभी स्वयंसेवकों से एकसी आत्मीयता से बात चीत करते थे। हारों की सुगंध उन्हें सहन न थी और केमरा से कोसों दूर रहते थे। स्वदेशी के उपयोग पर विशेष जोर देते थे। वे सदा कहते थे कि संघ के स्वयंसेवकों को यह कहने की आवश्यकता न पड़े कि तुम स्वदेशी का व्यवहार करो। जैसे किसी को दिन में दो बार भोजन करने की याद नहीं दिलानी पड़ती उसी तरह स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करने की याद या सीख देना आवश्यक नहीं होना चाहिये। वे स्वदेशी के उपयोग को इस हद तक स्वाभाविक और व्यवहार्य मानते थे। ऐसे महापुरुषों की रहन-सहन की सादगी विस्मयकारक नहीं। हममें से कितने ऐसे महापुरुष निकलेंगे जिनकी रहन-सहन इतनी सादगी की हो और विचार इतने उच्च ?

डॉक्टरजी के निर्मल और पवित्र चालचलन को शत्रु-मित्र सभी समान आदर भाव से देखते थे। उनकी सारी मानसिक और शारीरिक हलचलों में देखनेवालों को तत्व और व्यवहार का मेल ही नहीं, अभिन्नता दिखाई पड़ती थी। कहा जाता है कि दूर से देखने में ही वस्तुओं में सौंदर्य दिखाई पड़ता है।

उनका आंतरिक सौंदर्य

परन्तु डॉक्टरजी की अन्तरात्मा का सौंदर्य उन्हें अत्यधिक मोहक मालूम होता था, जिन्हें उनके पास रहने का और इस मोहक सौंदर्य को भलीभांति देख सकने का सदभाग्य प्राप्त हुआ था। उनके लोकोत्तर गुणों की सुमन-माला भी उनके प्रचंड और अखंड कार्य के अनुरूप ही थी। डॉक्टरजी प्रभावी व्यक्तित्व, अपूर्व संगठन-कौशल्य, तीव्र विवेचक बुद्धि, अथाह नीति, धैर्य, प्रखर राष्ट्रभक्ति और असामान्य लोक संग्राहक वृत्ति आदि अनेक सद्गुण-सुमनों से शोभायमान थे।

अमर हो गये

उनका अन्तःकरण आमरण मातृभूमि के उद्धार के लिये तड़पता रहा। जन्मभूमि के लिये उन्होंने अपने खून का पानी किया और अपने जीवनसर्वस्व की आहुति चढ़ा दी। डॉक्टरजी का जीवन मानों अखंड यज्ञ था। आत्म आहुति देकर और अपने आपको जलाकर उन्होंने हिन्दू राष्ट्र में नूतन प्रकाश फैलाया; और नई दृष्टि प्रदान की। हिन्दू राष्ट्र के चरणों में उनके द्वारा जो सबसे मूल्यवान भेंट चढ़ाई गई, वह है राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ। डॉक्टरजी स्वर्ग सिधारे। परन्तु डॉक्टरजी अमर हो गये, क्योंकि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अमर है।

वज्राघात

अंतिम बीमारी और महाप्रस्थान

अकल्पित वार्ता

साफ, नीले बिना बादल के आकाश में से एकाएक बिजली कड़कड़ा कर टूट पड़े, इसी प्रकार परमपूजनीय डॉक्टरजी की आकस्मिक मृत्यु की खबर हजारों लाखों अन्तःकरणों पर जा गिरी और उसके भयंकर आघात से उनके अन्तःकरणों में हड़कम्प मच गया। नागपुर के कई लोगों को और नागपुर से बाहर के तो बहुत से लोगों को डॉक्टरजी की बीमारी के विषय में अधिक जानकारी न होने के कारण झंझावात के समान कर्ण-कुहरों पर टकराने वाली इस वार्ता से हर व्यक्ति भौंचक सा रह गया। हाथ का काम जहां का वहीं छोड़कर हरेक आपस में यही पूछताछ करने लगा कि यह हुआ ही कैसे? "डॉक्टर हैडगेवार की मृत्यु हुई" इस शब्द समुच्चय का अर्थ तक लोग समझ न पा रहे थे। जिसे देखो वही बहिरा और सन्न हो गया था। किसी को कुछ सूझ न पड़ता था। हजारों लोगों के गले विह्वलता के कारण रुंध गए थे। कलेजा मुंह को आ रहा था और नेत्रों में आंसू उमड़ रहे थे। तरुणों और बालकों के जो चहरे कुछ ही समय पहिले प्रफुल्ल थे वे ही अब उतरे हुए और मुरझाये प्रतीत होते थे। डॉक्टरजी की वह हंसमुख भव्य-मूर्ति प्रत्येक की आंखों के आगे स्थिर भाव से दिखाई पड़ने लगी।

पर आखिर यह हुआ कैसे? हमारे डॉक्टर एकाएक कैसे चले गये? कहां गये वे? अब आगे इस अभागे हिन्दू राष्ट्र का क्या होगा? संघ का क्या हाल होगा? एक नहीं, हजारों प्रश्न हर एक के सामने मुंह बाये खड़े हो गये और जिसे देखो वही किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो शोक सागर में डूब गया।

इस बात की तो सभी को कल्पना थी कि इधर कुछ काल से डॉक्टरजी की प्रकृति उन्नीस-बीस रहा करती थी और कई लोग यह भी

जानते थे कि इन दिनों वे बीमार हैं। परन्तु इस बात को तो किसी ने भी–यहां तक कि सदा साथ रहने वालों ने भी–गुरुवार की रात तक नहीं सोचा था कि उनकी यह बीमारी अन्तिम सिद्ध होगी और उनके नसीब में डॉक्टरजी की मृत्यु की अमंगल बात सुनना बदा होगा। इसलिये इस खबर के साथ ही चारों ओर करुणा जनक हाहाकार मच गया।

१६ मई की शाम से उन्हें बुखार आया। पहिले कुछ दिन तो इसी ख्याल में बीत गये कि अभी हाल के पूने के दौरे की थकान के कारण यह हरारत है। पर बाद में बुखार के वेग को बढ़ते ही देखकर सबको चिन्ता पैदा हुई। दवा पानी चालू थी। फिर भी तबीयत दिनोंदिन गिरती ही गई और अन्त में ३७ दिन की बीमारी के बाद डॉक्टरजी का पुण्यात्मा इस जर्जरीभूत पार्थिव शरीर का त्याग कर अमर लोक को चल बसा।

डॉक्टर जी की अन्तिम बीमारी की ठीक तौर से कल्पना आने के लिये उनके रोग और स्वास्थ्य का संक्षिप्त पूर्व इतिहास यहां बता देना उचित होगा। इसके लिए हमें कई वर्ष पीछे जाना होगा। अस्तु। सन् १९२४ के न्यूमोनिया के पहिले आक्रमण के बाद बीच के ८ वर्ष अर्थात् सन १९३२ तक उनका स्वास्थ्य बिलकुल भला-चंगा था। १९३० के आन्दोलन के समय के कारावास में उनका स्वास्थ्य अत्यन्त अच्छा रहा। जेल के कष्टमय जीवन में भी आनन्दी वृत्ति के कारण उनका वजन १८ पौंड बढ़ गया। वे सदा कहा करते थे कि इस कारावास का उनके मन और स्वास्थ्य पर सभी दृष्टियों से अच्छा ही परिणाम हुआ। आगे चलकर संघ कार्य के प्रगतिशील विस्तार के कारण उन्हें सदा दौरे करते रहना पड़ा और लगातार जागरण होने लगे। और उनकी वज्र देह पर इनका परिणाम धीरे धीरे होने लगा। उनकी पीठ के बाईं ओर के भाग में एक स्थान पर जो पुराना दर्द था वह अधिकाधिक कष्टदायक होने लगा। मालिश करने से या सेंक करने से फायदा पहुंचता था। पर दर्द का पता उनके आस-पास रहने वालों को भी तभी लगा करता था, जबकि दर्द

बीमारी का संक्षिप्त इतिहास

अत्यन्त बढ़ने के कारण वेदना असह्य हो उठती थी। उनकी पीठ की दाहिनी ओर का भाग सदा बाईं ओर के भाग की तुलना में अधिक ठंडा मालूम होता था।

सन् १९३२ में उनके स्वास्थ्य में बिगाड़ देखकर डॉक्टरों ने यह सलाह दी कि वे कुछ काल पूर्ण आराम करें। इसके अनुसार वे दो माह तक धन्तोली में डॉ० हरदास जी के बंगले में रहे। सन् १९३४ में फिर तबीयत अधिक खराब प्रतीत होने के कारण उन्हें धरमपेठ में श्री कृष्णराव वैद्य के बंगले में चार महीने रखा गया। इन दोनों अवसरों पर यद्यपि निमित्त विश्रांति का था तो भी व्यवहार में 'आराम' उनके लिये संभव ही न था। स्वयंसेवकों, कार्यकर्ताओं और मित्रों आदि की मुलाकातें चालू रहती थीं। पत्र-व्यवहार, बैठकों आदि के कार्यक्रम भी पूर्वानुसार रहते थे। शहर से चार मील दूर धरमपेठ में उन्हें रखा गया तब भी स्वयंसेवकों की टोलियां उनके दर्शन के लिये नित्य धरमपेठ जा पहुंचती थीं। यदि डॉक्टरजी को पृथ्वी के दूसरे छोर पर भी रखा जाता तो भी उनके स्वयंसेवक तो पता लगाते-लगाते उनके पास पहुंचे बिना न रहते और डॉक्टरजी को भी अपने आस-पास स्वयंसेवकों की भरी पूरी बैठक देखे बिना चैन कहां पड़ती थी? ऐसी हालत में शारीरिक आराम कैसे मिल सकता? और मानसिक विश्रांति का तो नाम भी कोसों दूर था। दिल में सदा संघ कार्य के ही हजारों विचार और योजनाएं चक्कर लगाती रहती थीं। कार्य की चिन्ता ने कभी पिण्ड नहीं छोड़ा। ऐसी हालत में उन्हें शारीरिक, मानसिक चैन कैसे प्राप्त होता। आगे चलकर उनके वैद्यकीय सलाहकार तो हर वर्ष उन्हें आराम करने की सलाह दिया करते थे। परन्तु दिनों-दिन संघ-कार्य बढ़ता जाता था और उनके अखिल भारतीय कार्य का बोझा भी उन पर बढ़ता जा रहा था। दिनों-दिन डॉक्टरजी के दौरों बैठकों आदि के कार्यक्रमों में अतिशय वृद्धि होती गई और तदनन्तर 'आराम' की तो सूरत तक दिखलाई पड़ना न हो सका। इसमें अपवाद

१९३२ से १९४० तक

स्वरूप एक मौका आया जब कि श्रीमन्त बाबा साहेब घटाटे के अत्यन्त आग्रह के कारण नागपुर के सन् १९३९ के ऑफिसर्स ट्रेनिंग कैंप के बाद ता० २० जून को देवलाली आराम करने के हेतु से गये। पर वहां आराम तो एक ओर रहा, उल्टा एकाएक न्यूमोनिया का आक्रमण होकर तबीयत अत्यन्त खराब हो गई। परन्तु श्रीमन्त बाबा साहेब और नासिक के डॉ० दामले, डॉ० चौजे, श्री राजभाऊ साठे आदि महानुभावों की प्रेमपूर्ण सुश्रूषा और सावधानी के कारण उस बीमारी में से डॉक्टरजी सकुशल बच गए।

राजगिर कुण्ड में नैसर्गिक उपचार

उसके बाद साल भर डाक्टरजी का स्वास्थ्य साधारणतया खराब ही रहा। शरीर में से सदा पसीना निकला करता था। इस कारण आधी दर्जन बनियानें अदल-बदल कर पहिनने के लिए रखनी होती थीं और आधी दर्जन बनियानें अगले दिन के लिए धुलाने दी जाती थीं। कृत्रिम उपायों से ठंडा किया गया पानी, बर्फ, खस की टट्टियां, बिजली का पंखा आदि शीतोपचार उनको सहन नहीं होते थे। इसके विपरीत सभी ऋतुओं में उन्हें गरम कपड़ों का ही इस्तेमाल करना पड़ता था। सन १९३९ में एक विवाह-समारम्भ में उन्हें भूल से बर्फ का पानी पिलाया गया और परिणाम-स्वरूप जो खांसी उत्पन्न हुई उसने तीन वर्षों तक पिंड न छोड़ा। ऐसे मौकों पर उनका स्वभाव अत्यन्त संकोचशील रहता था। उन्हें यह बात बिलकुल नहीं भाती थी कि उनके लिये किसी को जरा भी कष्ट या झंझट उठाना पड़े। चढ़े हुए बुखार में भी जिस वस्तु की आवश्यकता हो, उसे खुद उठकर लेने की वृत्ति उनमें आखिर तक बनी रही। "महाराष्ट्र" के सम्पादक श्री गोपालरावजी ओगले और अन्य सुहज्जनों के आग्रह के फलस्वरूप डॉक्टरजी जनवरी सन १९४० में श्री अप्पाजी जोशी आदि ४-५ प्रमुख सहयोगियों के साथ बिहार में राजगिर के कुण्ड के औषधि-जल का सेवन करने के लिये राजगिर गए। वहां उनका निवास करीब दो माह हुआ। उन उष्ण

झरनों के स्नान ने उनके स्वास्थ्य में कुछ फायदा अवश्य पहुंचाया। पर अप्रैल में ग्रीष्म ऋतु का प्रारम्भ हो जाने के कारण उनको लौट आना पड़ा। पर राजगिर में भी उन्होंने वास्तविक रूप में आराम न किया उनका भारी भरकम पत्र-व्यवहार वहां से भी जारी ही था। वहां रहने पर उनके द्वारा गांव में संघ-शाखा की स्थापना होना तो स्वाभाविक बात थी। गये थे दवा-पानी और आराम करने के लिए, और लौटे संघ शाखा की स्थापना और बिहार प्रांत का दौरा करके। यह था आराम का उनका तरीका। उनके जीवन की हर एक सांस सदा के लिये—राष्ट्र के लिये—ही थी। संघ कार्य जिसमें न हो ऐसे आराम का विचार तक उन्हें कैसे सहन होता? वास्तव में संघ स्थान ही उनके लिये विश्रामस्थल था।

राजगिर से लौटते ही ऑफिसर्स ट्रेनिंग कैंप के दिन समीप आ गये। पूना के कैंप में पंद्रह दिन वहां के सारे कार्यकर्ताओं और स्वयंसेवकों के साथ आनंद और उत्साह के वातावरण में बिताकर ता० १६ मई को डॉक्टरजी नागपुर लौटे। यहां भी वे संघ-शिविर में ही उतरे। पर उसी दिन उन्हें रात में बुखार चढ़ आया और उत्तरोत्तर तापमान बढ़ता ही गया। उनके आने के बाद नागपुर कैंप २४ दिन तक चालू रहा परन्तु वे खुद रुग्ण-शय्या पर होने के कारण सदा के अनुसार किसी भी कार्यक्रम में न शामिल हो सके, न कार्यकर्ताओं तथा स्वयंसेवकों से ही दिल खोलकर बातचीत कर सकते थे। इस बात से उनका मन अत्यन्त दुखी था—इस बार उनकी बीमारी का मूल कारण था वही पीठ का पुराना, अगम्य और अतर्क्य दर्द। अंत तक इस दर्द ने उन्हें दम न लेने दिया। दर्द इतना बढ़ा कि बेकाबू हो गया और बुखार बढ़ता ही गया।

पीठ के दर्द ने पीछा न छोड़ा

सारे कैंप में डाक्टरजी केवल तीन ही बार स्वयंसेवकों को दर्शन दे सके। ता० १६ को सुबह पूना से मेल में आने के बाद उसी दिन दोपहर के बौद्धिक वर्ग में वे उपस्थित हुये। उसके बाद स्वयंसेवकों की बड़ी इच्छा थी कि फिर डॉक्टरजी के दर्शन हो सकें और डॉक्टरजी भी इसके लिए

ओ० टी० सी० में डॉक्टर

निरन्तर बेचैन थे कि अपने स्वयंसेवकों से मिल सकें, इसलिये जो बौद्धिक वर्ग रविवार ता० २ जून को शाम के समय हुआ, उसमें डॉक्टर साहिब स्वयं उपस्थित रहे। उस वर्ग में प० पू० डॉक्टरजी की इच्छानुसार कैंप के सर्वाधिकारी पू. माधवरावजी गोलवलकर का "शिवाजी महाराज का जयसिंह को पत्र" इस विषय पर करीब दो घण्टे तक अत्यन्त स्फूर्तिदायक और विचार-प्रवर्त्तक व्याख्यान हुआ। उसके बाद तीसरी और अन्तिम भेंट हुई ता० ९ के सुबह के निजी समारोप समारम्भ के समय पर। अगले दिन के जाहिर-उत्सव में हाजिर रहने के लिये जी अत्यन्त अकुला रहा था परन्तु वैसा करना स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक होने के कारण उन्हें मन मसोस कर घर में ही रहना पड़ा। फलतः उनकी मनस्थिति अत्यन्त विषण्ण हो गई थी, अतः दूसरे दिन उन्हें किसी तरह थोड़ा बहुत समाधान कराने के लिए उपरोक्त समारोप के प्रसंग पर कैंप में लाया गया। स्वयंसेवकों के प्रचण्ड समुदाय के सामने जोर से भाषण देने का कष्ट उन्हें न उठाना पड़े, इस हेतु ध्वनि-वर्धक यन्त्रों का प्रबन्ध किया गया था। स्थान-स्थानों के स्वयंसेवकों के भाषणों के बाद डॉक्टरजी ने छोटासा पर हृदयों में हलचल उत्पन्न कर देने वाला भाषण दिया। यही उनका अंतिम भाषण रहा।

डॉक्टर साहब का अंतिम संदेश

अंतिम संदेश

मान्यवर सर्वाधिकारीजी, प्रांत-संघ-संचालक महोदय, अधिकारी वर्ग तथा स्वयंसेवक बंधुओ—मैं यह नहीं जान सकता कि मैं आज आपके सम्मुख दो शब्द भी ठीक तरह से कह सकूंगा। आपतो जानते ही हैं कि गत २४ दिनों से मैं रुग्णशय्या पर पड़ा हुआ हूं। संघ की दृष्टि से यह वर्ष बड़े सौभाग्य का है। आज मेरे सामने मैं हिन्दू राष्ट्र की छोटी सी प्रतिमा देख रहा हूं, किंतु मेरी शारीरिक अस्वस्थता के कारण इतने दिन नागपुर में रहते हुए भी आपका परिचय प्राप्त कर लेने की अपनी इच्छा को मैं सफलीभूत नहीं कर सका। पूना के ओ० टी० सी० में मैं

१५ दिन तक था और वहां मैंने हर एक स्वयंसेवक से स्वयं परिचय कर लिया मैं समझता था कि नागपुर के ओ० टी० सी० में भी मैं वैसा ही कर सकूंगा किंतु मैं आपकी सेवा तनिक भी नहीं कर सका। यही कारण है कि मैं आज यहां पर आपके दर्शन करने आया हूं।

'मेरा और आपका कुछ भी परिचय न होने पर भी ऐसी कौनसी बात है कि जिसके कारण मेरा अंतःकरण आपकी ओर और आपका मेरी ओर दौड़ पड़ता है। रा० स्व० संघ की विचारधारा ही ऐसी प्रभावशालिनी है कि जिन स्वयंसेवकों का आपस में परिचय तक नहीं है, उनमें भी पहिली ही चौ-नजर में एक दूसरे पर प्रेम उत्पन्न हो जाता है। बातचीत होते न होते वे परस्पर मित्र हो जाते हैं। चेहरे की मुस्कराहट मात्र से वे एक दूसरे को पहिचान लेते हैं। पिछले दिनों जब मैं पूना में था, तब एक बार मैं और सांगली के श्री काशीनाथजी लिमये 'लकड़ी-पुल' पर से जा रहे थे। उसी समय हमारी ही ओर नौ-दस वर्ष की अवस्था के दो बालक आ रहे थे। हमारे पास से जाते समय किंचित मुस्करा कर वे आगे बढ़ने लगे। तब मैंने श्री काशीनाथरावजी से कहा, 'ये लड़के संघ के स्वयंसेवक हैं' मेरी इस बात पर श्री काशीनाथरावजी ने आश्चर्य प्रगट किया। बिना किसी तरह की जान पहिचान के मैंने इन बालकों को असंदिग्ध स्वर में स्वयंसेवक कैसे बतलाया ? यह उनके लिये एक समस्या हो गयी। उन्होंने मुझ से पूछा, 'यह आप कैसे कहते हैं कि ये हमारे स्वयंसेवक हैं ?' कारण उन दोनों की वेशभूषा में स्वयंसेवकत्व का निदर्शक कोई भी बाहिरी चिन्ह नहीं था। मैंने कहा, केवल मैं कहता हूं इसीलिये। क्या आप को इस बात की सत्यता आजमानी है ?' कुछ दूर चले गये हुए उन बालकों को मैंने वापिस बुलाया और पूछा, 'क्यों, हमें पहचानते हो ?' उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया 'जी हां, दो साल के पहिले आप शिवाजी मन्दिर में लगने वाली बाल-शाखा में आये थे। आप हमारे सर संघचालक डॉ० हेडगेवार जी हैं। आप के साथ के सज्जन सांगली के श्री काशीनाथराव जी लिमये हैं।' यह

संघ की तपश्चर्या का फल है। केवल किसी एक व्यक्ति का यह काम नहीं। अभी वहां पर जिन्होंने भाषण दिया वे मद्रास के श्री संजीव कामथ यहां एक अपरिचित के रूप में आये थे और अब चार रोज से ही हमारे भाई बन वापिस जा रहे हैं, इसका श्रेय किसी मनुष्य को नहीं, संघ को है। भाषा-भिन्नता अथवा आचार-भिन्नता होते हुए भी पंजाब, बंगाल, मद्रास, बंबई, सिंध आदि प्रान्तों के स्वयं-सेवक परस्पर क्यों इतना प्रेम करते हैं? केवल इसलिये कि वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के घटक हैं। हमारे संघ का प्रत्येक घटक दूसरे स्वयंसेवक पर अपने भाई से भी अधिक प्रेम करता है। सगे भाई भी कभी कभी घर बार के लिये आपस में लड़ते हैं, किन्तु स्वयंसेवकों में वैसी बात नहीं हो सकती। मैं आज २४ दिन से घर में पड़ा हूं। परन्तु मेरा हृदय तो था यहां ही आप लोगों के पास। मेरा शरीर घर में था, किन्तु मन कैंप में आप लोगों के बीच में ही रहा करता था। कल शाम को कम से कम पांच मिनट के लिये, केवल प्रार्थना के लिये ही संघस्थान पर जाने के लिये जी बहुत तड़प रहा था। किन्तु डॉक्टर लोगों के सख़्त मना करने पर मुझे चुप बैठना पड़ा।

'आज आप अपने-अपने स्थान को वापिस जा रहे हैं। मैं आपको प्रेम से विदाई देता हूँ। यह अवसर यद्यपि बिछोह का है, फिर भी दुःख का कदापि नहीं। जिस कार्य को सम्पन्न करने के निश्चय से आप यहां आये उसी कार्य की पूर्ति के लिये ही आप अपने स्थान पर वापिस जा रहे हैं। प्रतिज्ञा कर लो कि जब तक तन में प्राण हैं संघ को नहीं भूलेंगे। किसी भी मोह से आपको विचलित नहीं होना चाहिये। अपने जीवन में ऐसा कहने का कु-अवसर न आने दीजिये कि पांच साल के पहिले मैं संघ का सदस्य था। हम लोग जब तक जीवित हैं तब तक स्वयंसेवक रहेंगे। तन मन धन से संघ का कार्य करने के लिये अपने दृढ़ निश्चय को अखण्डित रूप से जागृत रखिये। रोज सोते समय यह सोचिये कि आज मैंने क्या क्या काम किया है, यह भी ध्यान में रखिये कि केवल संघ

का कार्य-क्रम ठीक रूप से करने या प्रतिदिन नियमित रूपसे संघस्थान पर उपस्थित रहने से ही संघ-कार्य पूरा नहीं हो सकता। हमें तो आसेतु-हिमाचल फैले हुए इस विराट हिंदू समाज को संगठित करना है। सच्चा महत्वपूर्ण कार्य क्षेत्र तो संघ के बाहिर बसने वाला हिन्दू जगत ही है। संघ केवल स्वयंसेवकों के लिये नहीं, संघ के बाहिर जो लोग हैं उनके लिये भी है। हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि उन लोगों को हम राष्ट्र के उद्धार का सच्चा मार्ग बतायें और यह मार्ग है केवल संगठन का। हिन्दू जाति का अन्तिम कल्याण इस संगठन के ही द्वारा हो सकता है। दूसरा कोई भी काम राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ नहीं करना चाहता। यह प्रश्न, कि आगे चलकर संघ क्या करने वाला है, निरर्थक है। संघ इसी संगठन-कार्य को कई गुना तेजी से आगे बढ़ायेगा यों ही बढ़ते बढ़ते एक ऐसा स्वर्ण-दिन अवश्य आयेगा जिस दिन सारा भारतवर्ष एक दिखाई देगा। फिर हिन्दू जाति की ओर वक्र दृष्टि से देखने की सामर्थ्य संसार की किसी भी शक्ति में न हो सकेगी। हम किसी पर आक्रमण करने नहीं चले हैं; परं इस बात के लिये सदा सचेष्ट रहेंगे कि हम पर भी कोई आक्रमण न कर सके। मैं आपको आज कोई नई बात तो नहीं बता रहा हूँ हममें से हर एक स्वयंसेवक को चाहिये कि वह संघ के कार्य को ही अपने जीवन का प्रधान कार्य समझे। मैं आज आपको इस दृढ़ विश्वास के साथ विदाई दे रहा हूँ कि आप अब इस मंत्र को अपने हृदय पर अच्छी तरह अंकित कर यहां से बिदा लेंगे कि एक मात्र संघ कार्य ही मेरे जीवन का कार्य है।

वज्राघात

धीरे धीरे स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया। तापमान नियन्त्रित होता ही न था। इसलिये सब डॉक्टरों की इच्छानुसार विशेष निदान के लिये उन्हें मेयो अस्पताल ले जाया गया। वहां डॉक्टरों ने पूरी तौर पर परीक्षा की। 'क्ष' किरणों से पीठ की तस्वीरें उतारी गईं, परन्तु उस

दर्द-स्थान का निदान न हो सका। नागपुर के एक प्रसिद्ध डॉ० डेव्हिड ने फेफड़ों की जांच की, पर वे भी रोग का निदान न कर सके।

मेयो अस्पताल की डॉक्टरी जांच के बाद उन्हें श्रीमान् बाबा साहब घटाटे के बंगले में रखा गया। बुधवार का दिन अत्यन्त बेचैनी में बीता। गुरुवार को सुबह जब डॉ० हरदास, डॉ० विपुरे और डॉ० जे एल० शर्मा ने नब्ज देखी तो उन्हें हाल अधिक चिन्ताप्रद दिखाई दिया। खून का दबाव अत्याधिक बढ़ गया था और डॉ० शर्मा ने लम्बर पंचर करने की तैयारी की। जब डॉक्टरजी ने देखा कि लम्बर पंचर करने तक की नौबत आ पहुंची है तो एक दम चौंके। उन्होंने अपने स्वास्थ्य की चिंताजनक स्थिति को समझ लिया और उन्हें यह ख्याल उत्पन्न हो गया कि अब हम थोड़े ही समय के मेहमान हैं। इस कल्पना से उनके हृदय में भीषण तूफान सा उठने लगा। उन्होंने विचार करने के लिये कुछ समय मांगा और कुछ देर के बाद श्री माधवरावजी गोलवलकर को अंदर बुलाकर उपस्थित सज्जनों के समक्ष कहा, "मेरा लंबर पंचर कराना ही हो तो करा डालें, पर इसके आगे संघ का सारा भार आपके सिर पर है यह ध्यान में रखें।" इसके बाद डॉक्टरों ने आपस में कुछ विचार-विमर्श कर यह तय किया कि तत्काल लंबर पंचर की आवश्यकता नहीं है। रात में या कल भी हो सकेगा। तब तक के लिये रुक जाना ही निश्चित हुआ। दोपहर में अत्यन्त अस्वस्थता रही। ऐसा प्रतीत होता था मानों उन्हें किसी प्रकार की भयंकर मनोव्यथा सता रही है। भावभंगी अतिशय उग्र हो गई थी। हर मिनिट बिछौने में उठ बैठते, खड़े होकर कमरे में इधर उधर चक्कर लगाते, फिर बैठते, पुनः उठते। यही क्रम चालू था।

फिर बीमारी

आस पास के लोग अत्यन्त चिंतातुर हो गये थे। लोगों ने शाम होने तक किसी तरह दिल थाम कर समय काटा। डॉ० हरदास, डॉ० तत्ववादी और डॉ. चोलकर फिर आये और यह सोचकर कि अब एक

क्षण का विलंब भी अनुचित है, इन लोगों ने लंबर पंचर किया। साधारणतया लंबर पंचर करने पर थोड़ा बहुत पानी निकला करता है पर डॉक्टरजी के लंबर पंचर करते ही जोर से पानी की धारा बह निकली। इस क्रिया के समय डॉक्टरजी को असह्य वेदनाएं हो रही थीं। शारीरिक और मानसिक व्यथाओं की हद हो गई। डॉक्टर जी ने दोनों हाथों से मुंह ढांप लिया और आंसुओं के लिये मार्ग खुल गया। डॉक्टरजी रोये। प्रलयकाल के तूफान के समान उनके हृदय में आंधी उठी होगी। खून का पानी कर जिस कार्य को पाला, पोसा, बढ़ाया, उस अपने कार्य का अपने पश्चात् क्या हाल होगा? इस आशंका से उनके हृदय में जो "न भूतो न भविष्यति" हल चल मची होगी उसका वर्णन शब्दों से किस तरह हो सकता है।

अंतिम काल रात्रि

रात में डॉक्टर हरदास ने यह निश्चित किया कि डाक्टरजी की देह में से रक्त निकाला जाये। इस निश्चयानुसार बहुत सा रक्त भी निकाला गया। परन्तु उचित परिमाण में रक्त न निकल सका। डॉ० तत्ववादी, डॉ० विंचुर्ं आदि सज्जन रात भर वहीं रहे, क्योंकि स्वास्थ्य की हालत नाजुक थी। हर घड़ी तबियत गिरती ही चली गई। रात में करीब ११ बजे से बुखार बढ़ने लगा। हर दो घंटों में एक डिगरी बुखार बढ़ रहा था। आधी रात बीतने के बाद डॉक्टरजी का चेहरा बहुत उग्र और गम्भीर प्रतीत होने लगा। ऐसा प्रतीत होता था, मानों वे किसी विचार-समाधि में प्रविष्ट होने की तैयारी कर रहे हों। रात के २॥ बजे उन्हें मूर्छा आई और उसके बाद अंतकाल तक वे प्रायः मूर्छित ही रहे। प्रायः कहने का तात्पर्य यह है कि बीच बीच में उनके मुख से कुछ शब्दोच्चार निकलते थे। ऐसा भास होता था मानों दृष्टि नासिकाग्र पर स्थिर कर कोई चीज एकटक निरख रहे हैं। तड़के के समय उनके मुख का उग्र भाव विहीन होकर धीरे धीरे एक प्रकार की शांति फैलती हुई दिखाई पड़ने लगी। प्रातः एक बार कुछ देर के लिये उनके चेहरे पर मुस्कराहट

की रेखा चमकी। डॉक्टर ओंठों में किंचित हँसे। सुश्रुषा करने वाले स्वयंसेवकों और डॉ० तत्ववादी आदि लोगों ने सारी रात जागते हुये ही बिताई थी।

इस प्रकार वह काल रात्रि बीती और जैसे तैसे करके सूर्योदय हुआ। पर वह दिन काल दिवस ही था। डॉक्टरजी के महाप्रयाण का क्रूर, कठोर दिवस! प्रातः तापमान बढ़ते बढ़ते १०६ डिग्री तक पहुंच गया। श्रीमन्त घटाटेजी दौड़ते हुए गये और डा० हरदास तथा डॉ० खरे को लाये।

अंतिम समय

परन्तु डाक्टरों ने आशा छोड़ दी और कह दिया कि इनका अन्तकाल समीप है। आशा का अंतिम तार टूट गया। चारों ओर अपूर्व हाहाकार छा गया। तत्काल टेलीफोन करके नागपुर के सारे प्रमुख अधिकारियों और कार्यकर्ताओं को बंगले पर बुला लिया गया। ये लोग जाकर देखते हैं कि ऊर्ध्व-सांस शुरू हो गई है। मृत्यु की काली छाया चारों ओर छा गई और हर व्यक्ति उदास और खिन्न अंतःकरण से आंसू पोंछता और हिचकियों को रोकने का प्रयत्न करता हुआ डॉक्टरजी की मृत्यु शय्या के आसपास चक्कर काटने लगा। ऊर्ध्व-सासों के समय डॉक्टरजी को अत्यन्त वेदनाएँ हो रही होंगी। लोगों से वे वेदनाएँ देखी नहीं जाती थी। बाहर के बरामदों और बगल के कमरों में लोग अधो-वदन चुपचाप बैठे थे। किसी के मुख से एक शब्द तक न निकलता था। डॉक्टरजी के कण्ठों की वह भयानक घर-घराहट बाहर बैठे हुए लोगों को भी स्पष्ट सुनाई पड़ती थी और हरएक का कलेजा टूक टूक हो रहा था। निर्दय मृत्यु की वह क्रूरता आंखों से देख सकना असह्य हो रहा था। लगभग एक घण्टे तक इस प्रकार ऊर्ध्व-श्वास चलता रहा। नौ बजकर पच्चीस मिनिट हुए। एक दम श्वासोच्छ्वास बन्द पड़ गया और डॉक्टरजी की गर्दन एक ओर लटक गई। बस! सबने सोचा कि डॉक्टरजी का प्राणांत हो गया और चारों ओर रोना-धोना मच गया। परन्तु इतने में फिर सांस चलती हुई दिखाई दी और किंचित

एक ओर किये हुये ओठों और पलकों में कुछ हलचल हुई। प्राण गये नहीं थे। बुझती हुई अग्नि में एक दो चिंगारियां बच गई थीं। पर-पर अरे यह क्या ? केवल दो ही मिनटों के बाद ठीक नौ बजकर सत्ताईस मिनिट पर डॉक्टरजी ने अंतिम सांस छोड़ी—प्राण-पखेरु उड़ गया। डॉक्टर हेडगेवार स्वर्गवासी हुए ! राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आद्य सर-संघचालक डॉक्टर हेडगेवारजी की मृत्यु हो गई !!

मृत्यु ! कितनी अमंगल कल्पना ! और फिर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आद्य सरसंघचालकजी की मृत्यु ! कल्पना की सारी मर्यादाओं को लाँघकर भी जिस अमंगल दृश्य को नेत्रों के सम्मुख लाना असम्भव था, वही अन्तःकरणों को रुलाने वाला अमंगल दृश्य नागपुर नगर ने उस दिन आंसू भरी आंखों से देखा। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की प्राण-ज्योति उस दिन बुझ गई। संघ की प्राण शक्ति को निर्दय यमदेव लोगों के देखते देखते हर ले गया। 'इन्हीं नेत्रों से इसी पार्थिव शरीर से' स्वतन्त्र हिन्दू-राष्ट्र का वैभव देख सकने के लिए जो विभूति जन्म भर व्यग्रतापूर्वक प्रयत्नशील रही, उसी का पार्थिव देह आज निश्चेष्ट होकर पृथ्वी पर सदा के लिये सो गया और वे प्यासी आंखें सदा के लिये मिच गईं।

संघ की प्राण-ज्योति अदृश्य हो गई

मृत्यु-शय्या के आस-पास सैंकड़ों स्वयंसेवकों का समूह उपस्थित था। फिर भी यमदूत हमारे प्राणस्वरूप डाक्टरजी को—आद्य सरसंघ-चालकजी को-हमारी आंखों के सामने ही सहसा उठाकर ले गये। अन्य प्रसंग पर यदि सरसंघ-चालकजी के एक बाल को भी किसी से धक्का पहुंचता तो ये स्वयंसेवक अपने खून की नदी बहा देते। परन्तु वे ही वीर स्वयंसेवक काल की उस कुटिल लीला को देखकर, दुख से विह्वल होकर, रोने और हिचकियां भरने के सिवा और कुछ न कर सके। उनके वश में और क्या था ?

इसकी अपेक्षा अधिक क्रूर आघात असभव

जहां मानवीय शक्ति पंगु सिद्ध होती है वहां दोनों हाथ ढांप कर अपने मृत स्नेही के प्रति अश्रुजल की अंजली अर्पण करने अथवा परमेश्वर की प्रार्थना करने के अतिरिक्त और चारा ही क्या है ? जितने आंसू राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आद्य सरसंघचालकजी के लिये बहाये गये उतने शायद ही किसी और के लिये बहाये गये हों ? यह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के इतिहास में सब से भयानक दुर्घटना थी। दैव की ओर से इस आघात से बढ़कर और कोई आघात हो सकना असंभव है।

तुरन्त ही यह शोक जनक खबर तार द्वारा सब ओर भेजी गई। नागपुर में "महाराष्ट्र" और पूने में "काल" पत्रों ने विशेषांकों के द्वारा इस समाचार को प्रकाशित किया। सारा वातावरण ऐसा स्तब्ध और हतप्रभ हो गया मानों आकाश से बिजली टूट पड़ी हो। नागपुर में डॉक्टर जी के निधन की वार्ता दावानल के समान चारों ओर फैल गई और हजारों स्वयंसेवकों और नागरिकों की टोलियां पागलों के समान श्रीमान् घटाटे जी के बंगले की ओर दौड़ पड़ीं। दोपहर में आसपास के गांवों से भी लोग पहुंचने लगे। अकोला, अमरावती, चांदा, भंडारा, वर्धा, हिंगन घाट, आर्वी, काटोल, उमरेड़, सावनेर, रामटेक, कामठी आदि स्थानों से रेल और मोटर से सैकड़ों कार्यकर्ता और स्वयंसेवक शवयात्रा के समय तक नागपुर में आ पहुंचे। दोपहर भर लोगों के झुंड के झुंड डॉक्टरजी के अन्त्य-दर्शन के लिये लगातार आते ही जाते थे। उनकी कतार सुबह से चालू हुई सो शाम तक अखण्ड रूप से चालू थी। प्रौढ, तरुण, और बाल स्वयंसेवक आकर डॉक्टर जी के पार्थिव शरीर का अंतिम दर्शन करते, प्रणाम करते और भारी अन्तःकरणों के साथ लौट जाते। छोटे छोटे बाल स्वयंसेवक चार चार मील से पैदल दौड़ते हुए आये। कड़ी धूप में प्यास से बेकल सुग्गों के मुखों के सदृश उनके मुख मुरझाये हुए थे। बेचारे बच्चे हतबुद्ध से एक ओर जा बैठते थे। श्रीमान् घटाटे जी के बंगले की चहार दिवारी में और बाहिर भी सैकड़ों लोगों की छोटी छोटी टोलियां खिन्न बदन से

अंत्य दर्शनार्थ

आपस में कानाफूसी करती हुई खड़ी थीं। किसी को यह न सूझता था कि क्या बात की जाय। हर एक चेहरे पर खिन्नता की छाया थी, आंखों में आंसू उमड़ रहे थे और दृष्टि तो शून्य की ओर लगी थी।

शाम को ५ बजे शवयात्रा निकालने का निश्चय किया गया था। लगभग चार बजे यकायक आकाश में बादल घिर आये। पहिले रिमझिम और बाद में मूसलाधार वर्षा शुरू हुई। मानों प्रकृति देवी इस वर्षा के द्वारा सहानुभूति के आंसू बहा रही थी। पर इस परिस्थिति में भी शवयात्रा के लिये इकट्ठा होने वाले लोगों का तांता न टूटा बरसते मेंह में हजारों लोगों का प्रचण्ड समुदाय घटाटे जी के बंगले के सामने रास्ते पर शांति के साथ खड़ा था। नागपुर का हर एक स्वयंसेवक उस समय वहां उपस्थित था। लगभग पांच बजे वर्षा का वेग कम हुआ और शवयात्रा की तैयारी की गई। यद्यपि मेंह रिमझिम रिमझिम बरस ही रहा था, फिर भी निश्चित समय शवयात्रा का जलूस रवाना हुआ। जलूस निकलने के पहिले अनेक संस्थाओं की ओर से अर्थी पर पुष्पहार चढ़ाये गये।

निसर्ग द्वारा समवेदना प्रदर्शन

अर्थी का वह जलूस नागपुर के इतिहास में अति प्रचण्ड और अभूत-पूर्व था। जलूस के आगे आगे साइकल सवारों की टुकड़ियां थीं। उनके पीछे सादी वेश भूषा में, नंगे सिर, चुपचाप हजारों स्वयंसेवक चार चार की कतारों में अनुशासन पूर्वक चले जा रहे थे। उनके पीछे नागपुर के हजारों नागरिक, उनके पीछे अर्थी और राष्ट्रीय भगवा ध्वज और फिर अंत में प्रमुख नागरिक, स्वयंसेवक गण और सायकल सवारों की टुकड़ियां थीं। यह प्रचंड मूक जलूस एक मील से भी अधिक लंबा था। नागपुर के कांग्रेस, हिन्दू महासभा, फारवड ब्लाक, सोशलिस्ट पार्टी, मजदूर दल, हरिजन बन्धु, आदि सभी पक्षोपपक्षों के लोग और महिला समुदाय भी इस शवयात्रा में सम्मिलित हुए थे। नागपुर का हर एक प्रमुख नागरिक डॉक्टरजी के अन्त्य

शवयात्रा

दर्शनार्थ उस जलूस में दिखाई पड़ता था। अर्थी की यात्रा महाराज बाग रोड, यूनिवरसिटी, सीताबर्डी मेन रोड, लोहे का पुल, सुभाषचन्द्र रोड, तिलक मूर्ति, चंडी रोड (बांकर रोड) चंडी के मंदिर से होती हुई डॉ० मुंजे जी के घर के सामने से केन्द्र संघस्थान में जा पहुंची। मार्ग में तिलक पुतला, चिटनीस पार्क, बड़कस चौक आदि स्थानों पर हजारों हिन्दू नागरिकों का अपार जनसमूह अन्त्य दर्शन के लिये खड़ा था। रास्तों के दोनों ओर लोगों की टोलियां खड़ी थीं। जो शव को अभिवादन कर रही थीं। जलूस के मार्ग के दोनों ओर के घरों, छज्जों और अटारियों पर भी आबाल वृद्ध स्त्री-पुरुषों की अपार भीड़ जलूस का अभूत-पूर्व दृश्य देखने खड़ी थी। जगह जगह अर्थी को पुष्प-हार अर्पित किये गये और पुष्प-वृष्टि की गई। इसमें पारसी सज्जनों ने भी भाग लिया। जलूस की जगह जगह तस्वीरें ली गई। धीरे धीरे भारी पैरों से यह सर्पाकार अर्थी का जलूस घुमावदार मार्ग पार करते करते चार घण्टों में केन्द्र संघ स्थान पर पहुंचा।

संघस्थान पर चिता दाह करने की इजाजत ऐन मौके पर मिल चुकी थी। अतः यह विशेष बात हुई कि जिस कार्य के लिये डॉक्टरजी ने अपना जीवन अर्पित किया था, वह कार्य जहां चला करता था, जहां केन्द्र संघ-शाखा और आफिसर्स ट्रेनिंग कैंप के दैनिक कार्यक्रम हुआ करते हैं, और जिसे इसी कारण डॉक्टरजी तपोभूमि कहा करते थे, उसी तपोभूमि में डॉक्टर जी की पार्थिव देह का चितादाह भी हो सका। जो भूमि ओ. टी. सी. में स्वयंसेवकों की चालीस दिन की विमल तपस्या से पावन हुई थी उसी भूमि में शवदाह हुआ। मैदान के बीचोंबीच विशाल मंडप तैयार किया गया था। उसके नीचे चिता सजाई गई। डाक्टर जी के ज्येष्ठ भ्राता के हाथों यथाविधि शव चिता पर रखा गया। इसके पश्चात् सब लोगों ने खड़े होकर संघ-प्रार्थना की और ध्वज प्रणाम और परम पूजनीय आद्य सरसंघचालक जी के पार्थिव देह को अंतिम प्रणाम

तपोभूमि पर दहन

समर्पित किया गया। उस समय सारे स्वयंसेवकों के अंतःकरण दुःखावेग से भर आये। तदनन्तर चिता में चन्दन, कपूर, घी आदि डालकर वैदिक रीति से मंत्राग्नि जलाई गई और शीघ्र ही चिता की इन लपलपाती हुई ज्वालाओं ने हमारे परम पूजनीय डॉक्टरजी के उस भव्य पार्थिव देह को आत्मसात् कर लिया। वह प्रेम भरी मूर्ति अब अपनी इन आंखों को न दिखाई पड़ेगी, अब हम डॉक्टरजी के प्रेम भरे हंस मुख चेहरे के शब्द न सुन सकेंगे। इन कल्पनाओं से हजारों स्वयंसेवकों के हृदय व्यथित हो गये। और धू-धू जलती हुई चिता को बार बार वदन करते हुऐ पुनः पुनः मुड़कर चिता को देखते हुए सारे स्वयंसेवक अत्यन्त उदास अंतःकरणों, खिन्न वदनों और भारी पैरों से किसी तरह रातके लगभग १०॥ बजे दहन-भूमि से वापिस लौटे। उधर चिता में ज्वालाएं नाच रही थीं, इधर स्वयंसेवकों के हृदयों में भी ज्वालाएँ धधक रही थीं। आद्य सरसंघ चालक जी की मूर्ति चिता की ज्वालाओं में विलीन हो गई। परन्तु स्वयंसेवकों के अंतःकरणों की ज्वालाओं में वही मूर्ति पुनः प्रगट होकर उनके हृदय-सिंहासनों पर सदा के लिये विराजमान हो गई। वही मनोमय मूर्ति अब हर एक स्वयंसेवक को स्फूर्ति देगी और उसी की प्रेरणा से यह महान् ईश्वरीय कार्य अंतिम यशः सिद्धि का मार्ग तै करते हुए बढ़ता जायगा।

विचार-धारा

विषय-सूत्र

आज हम पर असंख्य आपत्तियां टूट पड़ी हैं। फिर भी हम दुर्बल बने हैं। हम न अपनी स्त्रियों की रक्षा कर सकते हैं न अपनी बहू बेटियों की इज्जत बचा सकते हैं। अन्य समाज हमें अपना भक्ष्य समझते हैं। वे हमें गाजर-मूली समझते हैं। इनकी ऐसी कुछ समझ हो गई है कि हिन्दूओं की बहू-बेटियां उनकी ही सम्पत्ति हैं। हमारी दुर्बलताओं के कारण ही उन्हें हमसे डरने की जरूरत प्रतीत नहीं होती। आज हिन्दुस्थान में हम हिन्दू पच्चीस करोड़ हैं। इस देश की कुल जन-संख्या पैंतीस करोड़ है। शेष दस करोड़ आये कहां से ? ये दस करोड़ लोग हममें से ही निकल कर गये हुए हैं। हमारी गहरी नींद के कारण वे हम में से चले गये। हम सोते रहे इसीलिये वे हम से बिछुड़ गये। अब भी तो हमारी आंखें खुल जायें। आगे कभी यह पाप हम से न हो। जो आज हमें केवल गाजर-मूली समझ बैठे हैं उन्हें कल हमसे दहशत पैदा हो जानी चाहिये। हम वस्तुतः इतने दुबले नहीं हैं कि जो चाहे सो हमें निगल जाय। हमारे इसी घोर पाप के कारण हमारे ये अंग कट गये। अब हम भी कंटीले हो गये हैं। अब दूसरों को यह मालूम हो जाना चाहिये कि यदि उनमें से कोई हमें अपने मुंह में डालेगा तो उसका मुंह लोहूलुहान हो जायगा। अपने समाज को बलशाली और संगठित करने के लिये राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने जन्म लिया है। इसकी शाखाएं समस्त भारतवर्ष में हिन्दू समाज को बलिष्ठ बनाने का कार्य कर रही हैं। समूचे हिन्दुस्थान में एक भी कस्बा, एक भी गांव ऐसा न बचे जहां राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखा न हो। इन सब शाखाओं में एक सूत्रता का होना आवश्यक है। ऐसा होने पर ही हम हिन्दुओं में प्रखर तेज, प्रचण्ड आत्म-विश्वास तथा असीम सामर्थ्य निर्माण हो





सकेगा। तब फिर हमारी बराबरी करने वाला इस संसार में कोई न रहेगा। इसके लिये आप सब का सहयोग आवश्यक है। यदि आप कहेंगे कि हम तो अलग रहेंगे और दूर खड़े-खड़े देखते रहेंगे तो इससे कुछ लाभ नहीं। यह संघ है तो सब हिन्दुओं का न? बस, फिर सब हिन्दुओं को इसमें सम्मिलित हो जाना चाहिये। यह संघ तो आप सब लोगों का है। संघ में जाति-विशेष का महत्व नहीं, व्यक्ति विशेष के बड़प्पन को स्थान नहीं तथा स्थान विशेष सम्बन्धी अभिनिवेश का लेश मात्र नहीं। कठिनाइयां सभी को हैं। गृहस्थी सभी के पीछे लगी है। यदि सभी अपनी कठिनाइयों का रोना रोने लगेंगे, तो हम दूसरों के भक्ष्य बनने से न बच सकेंगे। संघ कार्य को सब बातों से अधिक महत्व का समझ कर यदि हम अपने आपको प्राणपण से इस कार्य में लगादें, तो कल कम से कम हमारी सन्तान हिन्दू के नाते जीवित रह सकेगी। हम हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिये इतना कुछ कर जांय कि जिससे हमारे पश्चात् भी हिन्दू धर्म में चैतन्य बना रहे। हमें सौंपी गई यह धरोहर चोरों के हाथ न लगने पावे। हम चौकन्ने रहकर इसकी रक्षा करते रहें।

२—जागतिक परिस्थिति और हिन्दुओं का भवितव्य

यदि हम पृथ्वी का नक्शा खोलकर देखें तो हमें क्या दिखाई देगा? यदि एशिया, यूरोप, अमेरिका तथा अफ्रीका महाद्वीपों को सरसरी दृष्टि से देखा जाय तो पता चलेगा कि ईसाई, इस्लाम, हिन्दू तथा बौद्ध धर्मों के अनुयायी चारों महाद्वीपों में फैले हुए हैं। संसार में ईसाई धर्म के मानने वालों की संख्या सब से अधिक है। इसके बाद मुसलमानों का नम्बर आता है।

बौद्ध और हिन्दू लोग केवल एशिया महाद्वीप में पाये जाते हैं। विशेषतः हिन्दुओं की संख्या तो केवल हिन्दुस्थान में ही अधिक है, किन्तु यहां भी सब ही भागों में वे बहुसंख्या में नहीं हैं। इस देश की पैंतीस करोड़ जन-संख्या में से केवल पच्चीस करोड़ हिन्दू हैं और शेष

दस करोड़ लोग कम से कम आज तो हिन्दू नहीं हैं। ये दस करोड़ भी पहले कभी हिन्दू ही थे; परन्तु हम अपनी उदासीनता तथा निष्क्रियता के कारण उन्हें गंवा बैठे हैं। आज का अफ़गानिस्तान कभी हमारा गांधार देश था; परन्तु आज वह पूर्णतया इस्लामस्थान बन गया है। काश्मीर रियासत पहिले से हिन्दुओं की रही है, किन्तु आज वहां नब्बे प्रतिशत जन-संख्या मुस्लिम है। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि वहां का नरेश हिन्दू होते हुए भी वहां मुस्लिम ही बहुसंख्या में हैं? काश्मीर हिन्दुस्थान का नन्दनवन माना जाता है। किन्तु वही नन्दनवन बहुसंख्य मुसलमानों का निवास-स्थान बने यह बात अवश्य उद्वेग-जनक है।

इसी प्रकार पंजाब और सिंध के प्रांतों में भी मुसलमान बहुसंख्या में हैं। बंगाल प्रांत एक समय हमारी सुवर्ण भूमि था तथा विद्या का केन्द्र था। किन्तु आज वहां पचपन प्रति सैंकड़ा संख्या मुसलमानों की ही है। यह भी हमारे लिये कम आश्चर्य की बात नहीं है। इसी तरह न केवल उत्तरी हिन्दुस्थान में मुस्लिम जनसंख्या प्रभावशाली है, बल्कि नर्मदा के दक्षिण में भी निज़ाम हैदराबाद जैसी मुस्लिम रियासत है जिसका शासक एक कट्टर मुसलमान ही है। एक जिम्मेदार मुसलमान व्यक्ति ने एक बार यहां तक कह डाला था कि उत्तर में मुसलमानों की बहुसंख्या होने के कारण उत्तर हिन्दुस्थान में केवल मुसलमान ही रहें। यह इस बात का संकेत है कि हिन्दुस्थान में भी इस्लामस्थान भली-भांति स्थापित हो जाय। निजाम हैदराबाद के द्वारा इस्लाम धर्म का प्रचार करने तथा उसके अनुयाइयों की संख्या बढ़ाने के हेतु अत्यन्त प्रोत्साहन दिया जा रहा है। कहने का आशय केवल इतना ही है कि जहां चार पांच सो वर्ष पूर्व हिन्दुस्थान पर ही नहीं अपितु उसके आसपास के देशों पर भी हिन्दुओं का आधिपत्य था वहां आज दशा यह है कि खास हिन्दुस्थान में भी हिन्दू इस देश को हिन्दुस्थान नहीं कह सकते।

पैंतीस करोड़ से घटते-घटते हम पच्चीस करोड़ रह गये हैं। यदि यही दशा कुछ शताब्दियों तक बनी रही तो एक दिन ऐसा भी आजावेगा

जब हिन्दू ढूंढ़ने से भी न मिलेंगे। इतने विस्तारपूर्वक सारी परिस्थिति आपके सामने रखने का प्रयोजन यही है कि हम यह स्पष्टतया देख सकें कि हमारी क्षति कितनी द्रुतगति से होती जा रही है। इसके ठीक विपरीत मुसलमान लोग सबके सामने खुल्लम-खुल्ला पाकिस्तान की मांग ब्रिटिश लोगों के सामने पेश कर रहे हैं। इस दशा में हमें सतर्क रहकर आत्म-संरक्षण के लिये संगठित हो जाना चाहिए। हममें सामाजिक भावना का अभाव ही हमारी क्षति का कारण बन गया है। हमें तो केवल अपनी ही व्यक्तिगत चिन्ता बनी रहती है। हम अपने समाज तथा संस्कृति का विचार भी मन में नहीं लाते। यदि इस शोकजनक परिस्थिति को बदल देना हो तो हमें अपना संगठन करना ही होगा। लोग कभी-कभी पूछ बैठते हैं कि कहिये, हिन्दू लोग एकाकी हिन्दुस्थान की उन्नति कैसे कर सकेंगे? इस पर मेरा उनके सामने एक सवाल है कि जहां यूरोप में चार पांच करोड़ लोग ही विशाल साम्राज्यों की बागडोर संभाल सकते हैं, क्या यहां पच्चीस करोड़ हिन्दू भी हिन्दुथान की उन्नति नहीं कर सकते?

आज हमारा हिन्दूसमाज संकटों से चारों ओर से घिरा हुआ है। इसके लिये हम ही दोषी हैं। हम दुर्बल हैं, हम सोये हुए हैं। एक ओर हमारे परधर्मीय शासकों का राजकीय प्रभुत्व, दूसरी ओर मुसलमानों के हम पर होने वाले सामाजिक अत्याचार। कैंची के इन दो फलों के बीच हमारा हिन्दू समाज आ फंसा है। मुसलमान बनाने के लिए हिन्दुओं पर किये जाने वाले अत्याचारों तथा हमारी बहू-बेटियों पर होने वाले बलात्कारों के विषय में यदि वर्णन करने लगूं तो भावनाएं काबू में न रहेंगी। इसलिए मैं वे बातें अभी नहीं करना चाहता। इसी प्रकार ईसाइयों की ओर से भी हम पर निरन्तर आघात हो रहे हैं।

यदि हमें उपर्युक्त आघातों से अपने समाज की रक्षा करनी हो तो अपने बीच संगठन पैदा करना ही होगा। हम लोग बिखरे हुए न रहें इसी एकमेव उद्देश्य से सन् १९२५ में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ स्था-

पित हुआ। उस समय हम लोगों को देशद्रोही कहा गया, किन्तु आज स्थिति में बहुत परिवर्तन होचुका है। यह संघ दिन दूना रात चौगुना बढ़ रहा है। हिन्दुस्थान में लगभग दो सो शाखाएं फैली हैं, जिनमें २०००० स्वयंसेवक नित्य-प्रति नियमित रूप से कार्य करते हैं। परन्तु अभी बहुत काम शेष है। समस्त भारत वर्ष में संघ की शाखाओं का जाल फैलाना चाहिये। ऐसे संगठन से ही हमारी दुर्बलता दूर होगी तथा हमारा समाज सामर्थ्यशील और प्रभावशाली बनेगा। यह कार्य किन्हीं एक-दो व्यक्तियों का नहीं है, अपितु समस्त हिन्दू समाज का है। वृद्धजनों को परिश्रम करके युवकों की सहायता करनी चाहिए, तभी यह कार्य जोर शोर से बढ़ेगा। आज तक के अनुभव से हम यह दावे के साथ कह सकते हैं, कि हम इस कार्य में अवश्य सफल होंगे। हमारा विश्वास है कि भगवान हमारे साथ है। हमारा काम किसी पर आक्रमण करना नहीं, अपितु शांति और संगठन का है। हिन्दू धर्म और हिंदू-संस्कृति के लिए हमें यह पवित्र काम करना चाहिए और अपनी उज्जवल संस्कृति की रक्षा कर उसकी वृद्धि करनी चाहिए, तभी आज की दुनिया में हम और हमारा समाज टिक सकेंगे।

३—हमारी अवनति की जड़—मानसिक दुर्बलता

आज चारों ओर से आवाज आ रही है कि अहिन्दू समाज बहुसंख्य हिन्दुओं पर आक्रमण कर रहे हैं। परिस्थिति ऐसी क्यों है? अहिन्दू समाज के लोग हमसे क्यों नहीं डरते। डरने की बात तो दूर रही उलटे वे हमें सताते है, और हम निरर्थक चिल्लाते हैं कि हम क्या करें, हमारा कोई त्राता नहीं। क्या यह करुण क्रन्दन ठीक है? अंग्रेजी में एक कहावत है "God helps those who help themselves," जिसका मतलब है, "ईश्वर उनकी सहायता करता है, जो स्वयं अपनी सहायता करते हैं।" मेरी समझ में ही नहीं आता कि भगवान हमारी सहायता क्यों करे? उन्हें हम पर दया क्यों आनी चाहिये? हम लोग स्वयं अपनी कौनसी सहायता कर रहे हैं, कि भगवान हमको बचाने के लिये

दौड़े आवें ? कुछ भी नहीं। गीता में भगवान कहते हैं कि वे "परित्राणाय साधूनां" अवतार लेंगे। किन्तु साधु कौन ? साधु किसे कहा जा सकता है ? जिन्हें न समाज या राष्ट्र की चिन्ता है, न धर्म या संस्कृति की; और न जिन्हें निरे व्यक्तिगत स्वार्थ के सिवा अन्य कुछ सूझता है, ऐसे दुष्टों के तो संहार के लिए ही परमेश्वर का अवतार हुआ करता है। हिन्दू-समाज में तो ये सभी दुर्गुण पराकाष्ठा तक पहुंच चुके हैं। क्या ऐसे लोगों को दुष्ट न कहा जाय ? साधु तो वे हैं, जो धर्म, राष्ट्र, समाज व जनकल्याण का भाव रखते हुए सदा अपना कर्तव्य करने के लिये उद्यत रहें। क्या इस प्रकार के त्यागी और कर्तव्य परायण लोग हिन्दू समाज में पर्याप्त संख्या में हैं ? यदि हिन्दुओं की कम से कम आधी जनसंख्या साधुता के उपर्युक्त भावों से भरी होती, तो इस महान् जाति पर निष्ठुर आघात करने का दुःसाहस कोई न करता। फिर भगवान स्वयं धर्म-संरक्षण करने के लिए हमारे बीच उपस्थित हो जाते। किन्तु आज की अवस्था में हम भगवान की सहायता की आशा नहीं करते। यह समझकर कि इस जाति में स्वार्थी तथा दुर्बल अर्थात् पापियों की ही भीड़ है, भगवान हम लोगों से अपना मुंह मोड़ लेंगे। यदि भगवान का यदा-कदाचित अवतार हुआ ही तो हमारी रक्षा के लिए नहीं, बल्कि हमको नष्ट करने के लिये ही होगा; क्योंकि दुष्टों का विनाश करना ही उनका प्रण है, जब तक हम में व्यक्तिगत स्वार्थ, दुर्बलता और समाज हितों के प्रति उदासीनता इसी प्रकार रहेंगे, और जब तक हम सज्जन नहीं बनेंगे, तब तक हमें दुष्ट समझकर भगवान हमारे नाश के लिए ही सहायक होंगे। हां, जब हम वास्तव में साधु हो जावेंगे, राष्ट्र, धर्म, एवं समाज के कल्याणार्थ अपना सब कुछ होम देने पर उतारू हो जावेंगे, तभी संभवतः भगवान हमारी सहायता करेंगे।

इसलिए आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप अपनी स्वार्थ अकर्मण्यता की भावना को समूल त्याग दो। समाज-सेवा के कार्य के प्रति असीम उदासीनता होने के कारण हमारा मन अतीव दुर्बल हो गया है। "समाज

चूल्हे में क्यों न जाय, मुझे इससे कुछ भी वास्ता नहीं। बस, मेरा स्वार्थ बना रहे," इस प्रकार के समाज सम्बन्धी उदासीनता के भाव हम में कूट कूट कर भरे हुए हैं। इसलिये हमारा समाज आज निर्बल हो गया है। हमारी मानसिक दुर्बलता के कटु फल हमारे समाज को भुगतने पड़ रहे हैं। मन की दुर्बलता ही सब से अधिक घातक दुर्बलता होती है और वही है हमारा सब से बड़ा दोष। यदि हम अपने आपको बलवान समझकर संगठन के कार्य में लगन के साथ जुट जायें, तो हमारी शक्ति विराट् रूप धारण कर लेगी। फिर कोई भी कार्य हमें असम्भव सा प्रतीत न होगा। असली बात तो यह है कि अपने में शक्ति होते हुए भी हम अपनी शक्ति को भूल रहे हैं। जैसे हमारे विचार होते हैं, वैसा ही हमारा आचरण होता है, अतीत काल में हम अतीव बलवान थे। परन्तु इस सत्य को आज हम बिलकुल भूल गये हैं और इसीलिये हमारे आज के सारे आंदोलन दुर्बलता के विचारों को साथ लिये हुए चलते हैं। हमारे आंदोलन में न चैतन्य है और न पुरुषार्थ। हमें 'राष्ट्र' शब्द के अर्थ का भी पता नहीं है। स्वदेश की कल्पना भी हमारे मन में कभी नहीं आती। उसको हम एक दम भूल गये हैं; उसके विषय में सोचना ही हमने छोड़ दिया है। हिन्दुस्थान की परिभाषा पुरातन काल से असंदिग्ध रूप में चली आई है। किन्तु हिंदुओं का हिंदुस्थान कहते ही आज के हमारे नेता गण चौंक उठते हैं।

भारतवर्ष, भरतखण्ड, आर्यावर्त, हिंदुस्थान आदि नामों के द्वारा एक ही अर्थ प्रगट होते हुए भी उस अर्थ की कल्पना मात्र से हम हड़बड़ा जाते हैं। किसी बन्धन में जकड़े हुए तोते जैसी हमारी अवस्था हो रही है। हम भ्रम के भंवर में फंसे गोते खा रहे हैं। हमारी संस्कृति को नष्ट-भ्रष्ट करने पर जो लोग तुले हुए हैं, उन्हें गले लगाने के लिये हम मरे जा रहे हैं। यह सारा परिणाम है हमारी मानसिक दुर्बलता का! हिन्दुस्थान को दुनियां के सभी लोगों का समझकर "साहेबजी हिंदुस्थान! बन्दगी हिन्दुस्थान! गुडमौर्निंग हिंदुस्थान" जैसे गीत गाते रहना

और "रक्ष भारता सहाय हीना," आदि करुण प्रार्थना करना, अपनी आंतरिक दुर्बलता का परिचय देना है। दूसरों से मदद की आशा करना या भीख मांगना निरी दुर्बलता का चिन्ह है। इसलिये, स्वयंसेवक बंधुओं, निर्भयता के साथ यह घोषणा करो, हिन्दुस्थान हिन्दुओं का ही है। अपने मन की दुर्बलता को बिलकुल दूर भगा दो। हम यह नहीं कहते कि विदेशी लोग यहां न रहें। परन्तु विदेशी लोग इस बात को कभी न भूलें, कि वे हिंदुओं के हिन्दुस्थान में रहते हैं और उन्हें हिन्दुओं के अधिकारों पर अतिक्रमण करने का कोई अधिकार नहीं। हमें ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देनी चाहिये कि हमारे सिर पर दूसरे लोग सवार न हों।

कई सज्जन तो यह कहते हुए भी नहीं हिचकिचाते कि हिन्दुस्थान केवल हिन्दुओं का ही कैसे? वह तो उन सभी लोगों का है जो यहां बसते हैं। खेद है कि इस प्रकार का प्रश्न पैदा करने वाले लोगों को राष्ट्र-शब्द का अर्थ ज्ञात नहीं। केवल भूमि के किसी टुकड़े को तो राष्ट्र नहीं कहते। एक विचार, एक आचार, एक सभ्यता एवं एक परम्परा से जो लोग पुरातन काल से रहते चले आये हैं, उन्हीं लोगों से राष्ट्र बनता है। इस देश को हमारे ही कारण हिन्दुस्थान नाम दिया गया है। दूसरे लोग यदि सामोपचार से इस देश में बसना चाहें, तो अवश्य बस सकते हैं। हमने उन्हें न कभी मना किया है न करेंगे। पारसी समाज के उदाहरण से हिंदुओं की उदारता का पूरा-पूरा परिचय मिल जाता है। किंतु जो हमारे घर मेहमान बनकर आते हैं और हमारे ही गले पर छुरी फेरने पर उतारु हो जाते हैं, उनके लिये यहां रत्ती भर जगह न मिलेगी। संघ की इस विचार-धारा को पहिले आप ठीक-ठीक समझ लीजिये। हमारा संगठन इसलिये है कि हम अपने घर में सम्मान के साथ जीवित रह सकें। इसमें किसी प्रकार के अन्याय की बात नहीं।

इंग्लैंड अंग्रेजों का, फ्रांस फ्रांसीसियों का, जर्मनी जर्मनों का देश है। इस बात को उपर्युक्त देशों के निवासी सहर्ष घोषित करते हैं। किंतु इस अभागे हिंदुस्थान के मालिक हिंदू, स्वयं अपने को इस देश का

अधिकारी कहने का साहस नहीं करते। ऐसे विपरीत भाव हममें क्यों पैदा हो गये ?

वास्तव में किसी भी व्यक्तिवाचक संज्ञा (Proper Noun) का अनुवाद अन्य भाषा में नहीं किया जा सकता। उसे वैसे ही रखा जाता है। किंतु हमारे मन की दुर्बलता को देखते हुए "हिंदुस्थान" यह विशेष नाम जो कि बिलकुल चरितार्थ है, उसे बदलकर हमारे प्यारे देश को "इंडिया" और उसके निवासियों को "इंडियन" नाम दे दिया गया। यह इसी हेतु से किया गया कि जिस 'हिंदू' और 'हिंदुस्थान' नाम से सुनते ही हमारा सारा गत इतिहास हमारी आंखों के सामने खड़ा हो जाता है, वह नाम भी सदा के लिए संसार से मिट जाय।

कोई अपढ़ आदमी भी इस बात को समझ सकता है कि यदि वर्तमान समय में हम जी जान से प्रयत्न न करें तो 'हिंदुस्थान' देश का नाम सिवाय इतिहास ग्रंथों के अन्य कहीं भी बाकी न बचेगा। हमारे नेता व्याख्यानों में गर्जना करते हैं कि हिंदुस्थान देश अमर है, किंतु इस प्रकार की थोथी बातों में क्या सचमुच कोई तथ्य है ? निरी अंधश्रद्धा से ऐसे विधानों पर विश्वास न रखो। बिना विशेष पुरुषार्थ के हिंदुस्थान को अमर बनाना असम्भव है। मनुष्य अपना छोटा सा संसार भी बिना प्रयत्नों के संभाल नहीं सकता; फिर राष्ट्र का विशाल जीवन-क्रम अपने प्रयत्नों के बिना आप ही निरंतर चलता रहेगा, ऐसी अपेक्षा करने में कितनी बुद्धिमता होगी ? राष्ट्र का जीवन-क्रम ठीक प्रकार से चलाने के लिये तो असीम प्रयत्नों की आवश्यकता होती है। बिना प्रयत्न के सिद्धि कहां ? जो सज्जन यह कहते हुए दिखाई देते हैं कि हम तो ईश्वर का भजन पूजन करते हैं, वह अवश्य हमें सफलता देगा, उन सज्जनों को मैं आवाहनपूर्वक कहना चाहता हूं कि वे मुझे एक भी उदाहरण बतावें जहां कहीं किसी मनुष्य के केवल पूजा-पाठ करने से सौ रुपये उसके चरणों पर आ टपके हों। ऐसा तो कभी नहीं होता। बिना कष्ट उठाये कार्य होना एकदम असम्भव है। हमें बहुत परिश्रम करना होगा। हां,

कार्य करते समय हम भगवान का अवश्य स्मरण रखें और जो कुछ कार्य करते हैं उन्हें परमेश्वर के चरणों पर अर्पित करने की भावना रखें।

कई महाशयों के ऐसे विचार होते हैं, कि अजी! उसमें है ही क्या? समय आने पर सब कुछ ठीक हो ही जायगा। परन्तु क्या अपने निजी मामलों में भी ये सज्जन कभी इसी प्रकार सोचते हैं? जब कभी अपने आप पर बीतती है, तब भगवान के नाम की रट लगाते कहां निश्चिन्त बैठते हैं? तब तो हर तरह की उठा-पटक करके और दौड़-धूप करके अपना काम बनाकर ही दम लेते हैं। व्यक्तिगत स्वार्थ के अतिरिक्त जब देश, धर्म या समाज का सवाल आता है, तभी उन्हें भगवद्भक्ति का बहाना सूझता है। तब हम यह क्यों न कहें कि उपर्युक्त विचारों की जड़ में सिवा स्वार्थ के कुछ नहीं है?

दूसरी भी एक श्रेणी के लोग होते हैं, जो कहा करते हैं कि 'राष्ट्र-सेवा का समय आ जाने पर हमें पुकारो; जहाँ भी कहो, कूद पड़ने के लिये हम तैयार हैं'। किन्तु, उनसे यह पूछे बिना मुझसे नहीं रहा जाता कि 'भाइयो, तुम्हें पुकारेगा कौन?' पुकारने का वह अन्तिम क्षण लगातार कार्य करने से ही तो निकट आ सकता है। अपने अपने घर में उस समय की बाट जोहने से कहीं वह स्वयं चलकर किसी के पास आवेगा? आप निर्णायक क्षण की राह देखते हुए स्वयं तो अपने घर में बैठेंगे और आशा यह करेंगे कि दूसरे लोग अन्तिम समय को नजदीक लाने के लिये कार्य करते रहें। क्या यह सारा व्यवहार सुसंगत है? अन्तिम निर्णायक क्षण इस तरह कैसे समीप आ सकेगा? विशेषकर संघ के स्वयंसेवकों को तो स्वयं निष्क्रिय रहते हुए ऐसी बातें कहना बिल्कुल शोभा नहीं देता, कि जब वह अन्तिम क्षण आ जावेगा उस समय हम सेवा करने के लिये प्रस्तुत ही रहेंगे। ऐसी भाषा हमारे सिद्धान्तों के विरुद्ध है। यही कहना पड़ेगा कि उपर्युक्त दोनों श्रेणियों के लोगों ने संघ की विचारधारा को कुछ भी नहीं समझा है। यदि हमें संसार के सम्मुख यह सिद्ध कर दिखाना है कि

हिन्दुस्थान हिंदुओं का राष्ट्र है तो हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम इस कार्य को अपना निजी कार्य समझकर उसकी सफलता के लिये आवश्यक आचार विचारों में अपना जीवन गूंथ दें। अपने ध्येय के अनुकूल लोगों को संगठित करना हमारा सबसे पहिला कार्य है। जो मनुष्य अपने आपको सच्चा हिन्दू कहलाता है, उसके पास पहुँचकर हम उसको अपनी आज की जातीय अवनति का ज्ञान करा दें तथा उसको देश-कार्य के लिये समुद्यत करें। ऐसे दस-पाँच हिन्दू इकट्ठे हो जाने पर उनका एक मुखिया नियुक्त कर देना चाहिए, जो कुशल कर्णधार हो। इस तरह शहर या देहात में कहीं भी काम शुरू हो सकता है। इस प्रकार संघ की शाखाओं का जाल जब तक सारे भारतवर्ष में नहीं फैलता तब तक हम यह नहीं कह सकते, कि हमारा संगठन पूरा हो गया। संसार का व्यवहार आप जानते ही हैं। सौ रुपये की चीज दुकानदार निन्यानवे रुपये में भी देने को तैयार नहीं होता। हर एक चीज की पूरी कीमत चुकानी पड़ती है। अतः जब तक हम अपने समाज में पर्याप्त शक्ति निर्माण नहीं करते तब तक हमें निरन्तर कार्य करते रहना होगा। केवल शरीर बल से तो काम चलता नहीं; साथ में विचार-शक्ति का भी होना आवश्यक होता है। पहिली आवश्यकता विचार-शक्ति की होती है। इसलिये संघ के स्वयंसेवकों को चाहिये कि वे पहिले अपने आपकी मानसिक दुर्बलता प्रयत्नपूर्वक मिटादें और फिर दूसरे साथियों में भी अपने समान मानसिक सामर्थ्य उत्पन्न करें।

आजकल अपना इतना विचित्र अधःपतन हो गया है कि धर्म, संस्कृति आदि सारी बातें हम भूल गये हैं और व्यक्तिगत स्वार्थ के अतिरिक्त अन्य किसी भी चीज को देखने में हम बिल्कुल असमर्थ हैं। 'संसार असार है; यह जीवन मायामय है' आदि तात्विक बातें केवल पुस्तकों में ही शोभा देती हैं; उनका प्रत्यक्ष व्यवहार से कोई सम्बन्ध नहीं। लोग हमें कहते हैं, 'आप theoretical (सिद्धान्त की) बातें बता रहे हैं'। मानों थिओरी केवल किताबों में लिखने के लिये ही होती हैं; उसका

Practice (व्यवहार) से कोई संबंध है ही नहीं। कितनी भ्रम-मूलक धारणा है। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि मनुष्यत्व इसी में है कि सिद्धान्त और व्यवहार का समन्वय हम कुशलता पूर्वक अपने जीवन में प्रकट कर सकें। यदि हम व्यक्तिगत स्वार्थ के भावों को तिलांजलि देदें तो सिद्धान्त और व्यवहार का समन्वय ठीक प्रकार से हो सकता है। हर समय हमारा स्वार्थ ही हमारे कर्तव्य के रास्ते में आपत्तियों के पर्वत खड़े करता है। अतः हमारे संघ-भाइयों को स्वार्थ की इन क्षुद्र मर्यादाओं को लांघ जाना चाहिये। पशुत्व को छोड़कर मनुष्य बनना चाहिए। हमें पहिले मनुष्य बनना है। स्वार्थभाव का लोप हो जाने पर मनुष्यता प्राप्त करना कोई खास कठिन बात नहीं। मन में यह भावना दृढ़मूल हो जाय कि मेरा जीवन और मेरी सभी शक्तियां मेरे धर्म और राष्ट्र के लिये हैं। वास्तव में स्वधर्म और स्वदेश का प्रत्येक मनुष्य को स्वाभाविक अभिमान होना चाहिये। किन्तु आज हम स्वदेश और स्वधर्म को बिल्कुल भूल गये हैं; यह कितनी लज्जास्पद बात है! और यही कारण है कि बार-बार उनकी याद दिलानी पड़ती है।

जिन उद्देश्यों को लेकर हम चलना चाहते हैं, उनमें न किसी प्रकार का दोष है न किसी प्रकार का पाप। अपने धर्म और राष्ट्र की रक्षा करने का बीड़ा हमने उठाया है। इसमें कौनसा पाप है? साथ-साथ हम यह भी न भूलें कि यह विशाल कार्य किसी भी एक मनुष्य या चंद मनुष्यों के हाथों संपन्न होने वाला नहीं है। उसके लिये तो एक ही ध्येय से प्रेरित लाखों करोड़ों लोगों के संगठित प्रयत्नों की आवश्यकता है। मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि इस विशाल भारत के कोने-कोने में ऐसे ध्येयनिष्ठ और बलवान तरुणों के संघ का घना जाल फैला दो। फिर इस कार्य में कठिनाई न होगी। चारों ओर आशा तथा उत्साह के नवजीवन का सुन्दर चित्र सहज ही दिखाई देने लगेगा। यह परिस्थिति उत्पन्न करने के लिये हमारे आज के कार्यक्रम साधनरूप हैं। कई सज्जन इन्हीं कार्यक्रमों को संघ का उद्देश्य समझते हैं। किन्तु यह उनका भ्रम है। हमें अपने

आचरण से इस असत्य धारणा को दूर करना चाहिये। देश में हमें एक सूत्रता और अनुशासन निर्माण करना है। इसका अर्थ यह नहीं कि लाठी-काठी या सैनिक शिक्षा बिलकुल निरुपयोगी हैं। केवल इतनी ही बात है कि हमारे उद्देश्य की तुलना में उपर्युक्त शिक्षा गौण है। जिन्होंने इन कार्यक्रमों को ही संघ का 'सब कुछ' समझ रखा है उनके लिये ध्येय और कार्यक्रमों का सम्बन्ध स्पष्ट कर देना मैंने उचित समझा। स्वधर्म और स्वराष्ट्र की रक्षा के लिये बल संवर्धन करना ही संघ का उद्देश्य है, यह बात संघ के बच्चे बच्चे को मालूम है।

संसार में शान्ति और सुव्यवस्था के लिये समस्थिति (Balance) की आवश्यकता होती है। जहाँ बलहीन और बलवान इकट्ठे रहते हैं, वहाँ अशान्ति अवश्यम्भावी है। दो शेर एक दूसरे को नहीं छेड़ते। किन्तु यह बताने की जरूरत नहीं कि शेर और बकरी के इकट्ठे आ जाने पर क्या होता है। समान-बल वालों में ही शांति तथा प्रेम रह सकता है। दुनियाँ की शान्ति के सच्चे दुश्मन हैं, अत्याचारी लोगों को उत्तेजित करने वाले दुर्बल लोग। यदि हम दुर्बल हैं, तो दुनियाँ की सुख-शान्ति नष्ट करने का पाप हमारे मत्थे पड़ेगा। अतः हमारी कोशिश यही होनी चाहिये कि शान्तिमय मानवी जीवन को तहस-नहस करने का पाप हमारे सिर न लगने पाये। किन्तु केवल इच्छामात्र से ही कार्य नहीं होता। साक्षात् भगवान को भी दशावतार लेकर मनुष्य-शक्ति के द्वारा ही कार्य करना पड़ा। इस शक्ति को कुछ लोग पशु-शक्ति कहते हैं। किन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि धर्म-रक्षा तथा जन-कल्याण के लिये जो शक्ति काम में लाई जाती है उस पवित्र शक्ति को लोग 'पशु-शक्ति' कैसे कह सकते? वास्तव में तो यह शक्ति उतनी ही पवित्र एवं मङ्गलमय है, जितनी कि अध्यात्मिक शक्ति है। हमें हिंसा करने के लिये बलवान नहीं बनना है किन्तु संसार की सारी हिंसा और अत्याचार सदा के लिये मिटा देने के लिये ही हमें सामर्थ्य सम्पादन करना है। आज दुनियाँ में चारों ओर अन्याय, अत्याचार और अधार्मिकता का स्वच्छन्द साम्राज्य फैला हुआ

है। वह जब तक नष्ट नहीं होगा, जब तक हम चाहे जितने जप-तप करें, हमें मोक्ष का अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता। न जाने क्यों, यह सीधी सी बात लोगों की समझ में नहीं आती ? बस हमारी सारी अवनति की जड़ है हमारी मानसिक दुर्बलता। इस दुर्बलता को हम सर्व प्रथम नष्ट करदें। संघ के उद्देश्य की पूर्ति के लिये हमें क्या करना चाहिये, इसका सम्यक् ज्ञान प्रत्येक स्वयंसेवक कर लेवे। हममें से प्रत्येक की एकमेव यही धारणा हो जानी चाहिये कि मैं और मेरा सब कुछ संघ के लिये, अर्थात्, देश के लिये है। प्रत्येक स्वयं-सेवक के रोम-रोम में देशप्रेम की भावना रम जानी चाहिये। केवल अवसरवादी देशभक्त बनना स्वयंसेवक के लिये व्यर्थ है। यदि सारे स्वयं-सेवकों की मनोवृत्ति इस प्रकार संघमय हो जाय तो हमारी ध्येय-पूर्ति में देरी न लगेगी।

४—स्वयंसेवकों के आवश्यक गुण

यहाँ आप लोग राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अत्यन्त जिम्मेवार स्वयं-सेवक एकत्र हुए हैं। स्वयंसेवक अवस्था में चाहे छोटा हो या बड़ा, किन्तु वह राष्ट्र का एक जिम्मेदार घटक (अंग) हुआ करता है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि राष्ट्र के अन्य लोग इस उत्तरदायित्व से अलिप्त रह सकते हैं किन्तु राष्ट्र के प्रति जिम्मेवारी निभाने का संकल्प करके ही हम संघ में प्रविष्ट हुए हैं, इसीलिए हम सब स्वयंसेवकों का उत्तरदायित्व और अधिक बढ़ जाता है। परिवार का ही उदाहरण लीजिये। परिवार में एक व्यक्ति कर्ता (मुखिया) होता है। उसी पर सारे कुटुम्ब के पालन-पोषण का भार रहता है; किन्तु इसीलिए कुटुम्ब के अन्य व्यक्ति अपनी जवाबदारी भूल नहीं सकते। कुटुम्ब में हर एक को कुटुम्ब के प्रति अपनी विशिष्ट जिम्मेवारी निभानी ही चाहिये। कुटुम्ब की केवल मुख्य जिम्मेदारी चालक या मुखिया पर होती है इसी सिद्धान्त का ध्यान रखते हुए प्रत्येक को अपना कर्त्तव्य निभाना चाहिये। हमें अपने नित्य के व्यवहार भी ध्येय पर दृष्टि रखकर ही करना चाहिये। प्रत्येक को अपना चरित्र कैसा रहे, इसका विचार करना

चाहिये। अपने चरित्र में किसी भी प्रकार की त्रुटि न रहे। किसी भी आन्दोलन में साधारण जनता कार्यकर्ता के कार्य का उतना ख्याल नहीं करती, जितना कि उसके व्यक्तिगत चरित्र का; इसीलिए हमारी चादर इतनी साफ रहे कि हमारे चरित्र में ढूंढने से भी दोष या कलंक का छींटा तक न मिले। जनता को विश्वास हो जाय कि हम अपना प्रत्येक कार्य निःस्वार्थ बुद्धि की प्रेरणा से कर रहे हैं। हमारा चरित्र इस सीमा तक उज्जवल हो कि जिससे अन्य लोग प्रभावित होकर निष्कलंक चरित्र पर मुग्ध होवें और हमसे मित्रता करने तथा सभी दृष्टि से हमारी हित-रक्षा करने के लिए उत्सुक रहें। संघ के अतिरिक्त अन्य लोग जो कभी संघ का उपहास तथा विरोध भी करते थे, आज हमारे स्वयंसेवकों के शुद्ध चरित्र के कारण संघ से असीम प्रेम करने लगे हैं। यदि किसी कारण उन्हें ऐसा मालूम पड़े कि हमारा चरित्र शुद्ध नहीं है, तो संघ के प्रति उनका प्रेम, तथा हमारे प्रति उनका आदर एकदम नष्ट हो जावेगा। आप इस भ्रम में न रहें कि लोग हमारी ओर नहीं देखते। वे हमारे कार्य तथा हमारे व्यक्तिगत आचारों की ओर आलोचनात्मक दृष्टि से देखा करते हैं। इसीलिए केवल व्यक्तिगत चाल-चलन की चौकसी रखने से काम न चलेगा, अपितु सामूहिक एवं सार्वजनिक जीवन में भी, हमारा जीवन उदात्त ही हो। साथ ही चरित्र निष्कलंक होने के कारण अनजाने में भी हम में यह दुर्भावना छू तक न जानी चाहिये, कि हम कुछ हैं तथा औरों से श्रेष्ठ हैं। किसी भी दशा में, स्वप्न में भी ऐसा न मालूम पड़े कि हम अन्य लोगों से कहीं अच्छे हैं। मुझे विश्वास है कि हम में ऐसा अहंभाव रखने वाला कोई नहीं है, किन्तु यदि कोई ऐसा हो, जो सोचता हो कि मैं बहुत कार्य कर रहा हूँ, इसलिये औरों से कुछ श्रेष्ठ हूँ और इसी नाते दूसरों को नीची तथा तुच्छ दृष्टि से देखने का अधिकारी हूँ, तो मैं उसे यह परामर्श देता हूँ कि वह ऐसे वृथाभिमान को निकाल बाहर फैंके।

यदि आप अपने अतीत जीवन तथा गत घटनाओं का पुनः पुनः

एकान्त में अवलोकन करते रहें तो आपको अपने दोष दिखाई देंगे। जिन्हें अपने दोष न दिखाई पड़ें और जो अपने आप को सर्वथा दोष रहित समझें उनका सुधार होना कदापि संभव नहीं। जो अपने चरित्र की त्रुटियों को देख सकते हैं, वही अपने चरित्र को सुधार भी सकते हैं। यदि कोई स्वयंसेवक कहे कि उसका चरित्र आज दोष रहित है, अतः उसे अतीत जीवन का निरीक्षण एवं परीक्षण करने की क्या आवश्यकता है, तो ऐसा स्वयंसेवक अपने चरित्र की उन्नति नहीं कर सकता। अतः हम आत्मनिरीक्षण करके अपने सभी दुर्गुणों को मूलोच्छेदन कर डालें और ऐसे गुणों को ही अपनायें; जो हमारे कार्य की वृद्धि के पोषक हों और जिनके कारण लोगों को हम अपनी ओर आकर्षित कर सकें।

यदि हम अपना आचरण इतना शुद्ध रखेंगे तो हमारे मन में शुद्ध विचार अवश्य उत्पन्न होंगे। एक बार शुद्ध विचारों का संचार होते ही आप से आप हमारे मन में इस प्रकार के प्रश्न उठने लगते हैं—हम कौन हैं? हमारा कर्तव्य क्या है? हमें क्या करना है? हमने कितना कार्य समाप्त कर लिया है? उद्दिष्ट तक पहुँचने के लिए हमारे कार्य की गति पर्याप्त है अथवा नहीं? इत्यादि। मुझे विश्वास है कि यदि सचाई के साथ हम उक्त प्रश्नों के उत्तर अपने मन ही मन देवें तो हमें निश्चय ही प्रतीत होगा कि हम लोग जो कुछ भी कार्य प्रतिदिन करते हैं, वह ध्येय की विशालता का विचार करते हुए बहुत ही अपर्याप्त है। हमें समस्त संसार को सप्रमाण सिद्ध कर दिखाना है कि हिन्दुस्थान हिन्दुओं का ही है। इस विचार से, हमें कार्य की गति बढ़ा कर कितनी अधिक प्रगति करनी है, इसका विचार आप स्वयं ही करें।

'हिन्दुस्थान हिन्दुओं का है' इस ध्येय वाक्य की घोषणा संघ पिछले ग्यारह वर्षों से करता चला आया है। अभी तक विशेषतः संघ के जन्म समय, इस वाक्य का उच्चारण भी महापाप समझा जाता था। तथा लोग इस वाक्य का उच्चारण करने से भी डरते थे। इस वाक्य का उच्चारण सर्वप्रथम संघ ने ही किया; परन्तु संघ में सार्वजनिक मंच

पर आकर व्याख्यान देने की प्रथा नहीं है और न समाचार पत्रों में संघ विषयक लेख प्रकाशित किये गये। आधुनिक युग के विज्ञापन के किसी भी साधन का सहारा न लेते हुए, संघ ने न केवल अपने स्वयंसेवकों में ही 'हिन्दुस्थान हिन्दुओं का है' यह वाक्य प्रचलित किया, परन्तु इसी के फलस्वरूप उसका प्रचार इतना हो गया, कि आज अनेकानेक सभामंचों से इस सिद्धान्त की घोषणा सुनने में आती है।

परन्तु इतने से ही हमारा काम पूरा नहीं हो जाता। दुर्भाग्यवश हिन्दुस्थान के लोगों को न तो धर्म की आवश्यकता प्रतीत होती है और न उसके सम्बन्ध में विचार करने की। यदि वे धर्म, देश आदि के विषय में सोचते, तो उन्हें संघ का वास्तविक स्वरूप समझने में कोई कठिनाई न हुई होती; परन्तु उन्हें तो धर्म, समाज, राष्ट्र आदि सम्बन्धी विचार तुच्छ जान पड़ते हैं। घर की चारदीवारों के भीतर के जीवन में ही वे लिप्त हैं। अतः देश में कोई आन्दोलन उठता है, तो वे उसकी ओर मनोरंजन वस्तु की दृष्टि से ही देखते हैं राष्ट्रोत्थान के सम्बन्ध में किये हुए प्रयत्नों को दिल बहलाने का साधन समझने का मूल कारण लोगों की स्वार्थवृत्ति ही है। इसी कारण हमारे राष्ट्र में पिछले पचास वर्षों से राष्ट्र जागृति के अनेकानेक प्रयत्न होने पर भी प्रत्येक शहर या देहात में सार्वजनिक कार्य के लिए उद्यत रहने वाले कार्यकर्त्ताओं की संख्या आज भी उङ्गलियों पर गिनने ही लायक होती है। लोग अपनी स्वार्थ-वृत्ति के कारण ही संघ के समझने में असमर्थ रहते हैं; न तो उन्हें संघ के ध्येय की अनुभूति ही हो पाती है और न वे संघ के विशाल स्वरूप की कल्पना ही कर पाते हैं।

मैंने जो प्रारम्भ में यह कहा था कि व्यक्ति के चरित्र में कोई भी दोष हो या न हो, वह निष्कलंक हो, और जो सिद्धान्त प्रतिपादन किया कि सारे दोष नष्ट करके स्वयंसेवक के शुद्ध-चरित्र बनने पर ही कार्य हो सकता है, वे सारी बातें 'संगठन' के लिए भी लागू होती हैं। संगठन तथा संगठन की कार्य प्रणाली में कोई त्रुटि न रहने पाये। संघ किसी

भी कार्य क्षेत्र में नहीं उतरता, इसी लिए उस पर कोई रंग नहीं चढ़ पाता। संघ पर केवल एक रङ्ग है और वह है संगठन का। यदि हम किसी पक्ष-विशेष में अथवा किसी आन्दोलन में सम्मिलित हुए, तो निश्चय जानों कि हम पर उनका रंग चढ़े बिना नहीं रह सकता। परन्तु ऐसा कोई अन्य रंग संघ को नहीं लगा लेना है।

संघ की इस अलिप्त वृत्ति के कारण कई लोगों की यह धारणा हो जाया करती है कि संघ कुछ भी ठोस कार्य नहीं करता। उनकी इस धारणा के सम्बन्ध में यही कहना पड़ेगा कि वे संगठन शास्त्र का तत्व नहीं जानते। संगठन का चाहे जो उद्देश्य हो, उसमें एक प्रकार की शक्ति हुआ करती है। संगठन में निजो सामर्थ्य के प्रति एक विशिष्ट प्रकार का आत्मविश्वास हुआ करता है। हमारे आलोचक इस बात का ध्यान रखें कि संगठन का हरएक घटक अपने हृदय की भावनाओं को कार्यरूप में परिणत किये बिना नहीं रह सकता। संघ का प्रत्येक घटक यह भली-भाँति जानता है कि दिन के चौबीस घंटे भी उस कार्य के लिये अपर्याप्त हैं, अतः संघ के कार्य से उसे अन्य कार्य करने की फुरसत न मिल सके, तो इसमें उसका या संगठन का कोई दोष नहीं।

पिछले पचास वर्षों में राष्ट्र जागृति के जो प्रयत्न हुए उनसे सबको यह स्पष्टतया प्रतीत हो गया है, कि संगठन का कार्य ही सबसे महत्व-पूर्ण है। हमारे हरएक संघ-घटक का तो विश्वास ही है कि संगठन के अतिरिक्त, राष्ट्र के सामने और ध्येय रह ही नहीं सकता। इसलिए संगठन को छोड़ अन्य फुटकर काम-काजों के लिए उसे अवकाश न मिले तो उसे तनिक भी दुःख नहीं होता। संगठन में असीम सामर्थ्य है, परन्तु उसकी अनुभूति प्रत्येक स्वयंसेवक के मन में होनी चाहिये। हम संगठन करते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि अन्य सब कामों की अपेक्षा संगठन ही श्रेष्ठ है।

व्यक्ति के समान ही संगठन भी निर्दोष होना चाहिये। कभी-कभी हमें पता भी नहीं रहता कि हमसे कब और कैसे भूल हुई। अतः हमें

कार्य करते समय अत्यन्त सतर्क रहना चाहिये। संघ में आने पर व्यक्ति का अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व रहता ही नहीं। अतएव स्वयंसेवक को वही काम करना उचित है, कि जिससे संगठन को लाभ पहुँचे। परन्तु इससे यह अभिप्राय नहीं, कि स्वयंसेवक को व्यक्तिशः कोई काम करने की मनाई है। अपनी निजी जिम्मेदारी पर वह कोई काम भी खुशी से कर सकता है। परन्तु वह वही काम व्यक्तिशः कर सकता है, जिसका संघ से कोई सम्बन्ध न आता हो। वह उन कामों को करे जिनको करते हुए उसकी कृति के कारण संघ को दाग न लगता हो। तथा किसी भी समय संघ ध्येय उसकी दृष्टि की ओट न हो। बोलते-चालते, आचार-व्यवहार करते, तथा प्रत्येक कार्य करते समय हम सावधान रहें कि हमारी किसी भी कृति के कारण संघ के ध्येय तथा कार्य को कोई क्षति न पहुँचे।

इस रीति से दोष रहित कार्य करने के लिये शुद्ध चरित्र के साथ-साथ आकर्षकता और बुद्धिमत्ता का मणि-कांचन संयोग करना चाहिये। चरित्र, आकर्षकता तथा चतुराई इन तीनों के त्रिवेणी संगम से ही संघ का उत्कर्ष होता है। चारित्र्य के रहते हुए भी चतुराई के अभाव में संघ-कार्य हो नहीं सकता। संघ-कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए लोकसंग्रह के तत्व से पूर्ण परिचित रहें।

आप लोगों में से कितने ही स्वयंसेवक स्कूल तथा कॉलेज की शिक्षा समाप्त कर अन्यान्य स्थानों को जावेंगे। वहाँ आप ही को अगुआ बनकर काम करना होगा और कहीं आप अपने काम में सिद्ध-हस्त न रहे तो आपके लिए वहाँ कार्य कर सकना असम्भव हो जावेगा। अतः अभी से आप संघ कार्य का अधिक से अधिक अनुभव प्राप्त करलें। अभी जो बातें बतलाई गई हैं, उन्हें पूर्णतया हृदयंगम कर चरित्र पालन का पूरा-पूरा ध्यान रखें तथा शुद्ध चरित्र में व्यवहार चातुर्य, आकर्षकता तथा बुद्धिमत्ता का यथोचित योग करें।

५—संगठन की महिमा और तन्त्र

संगठन ही राष्ट्र की प्रमुख शक्ति होती है। संसार में कोई भी समस्या हल करनी हो तो वह शक्ति के बल पर ही हल हो सकती है। शक्तिहीन राष्ट्र की कोई भी आकांक्षा कभी भी सफल नहीं होती। परन्तु सामर्थ्यशाली राष्ट्र, चाहे जब, कोई भी काम अपनी इच्छानुसार कर सकता है। किसी श्रीमान् मनुष्य का उदाहरण लीजिये। वह जब भी चाहे अपनी इच्छा पूर्ण कर सकता है। यदि वह आलीशान कोठी बनवाना चाहे तो तुरन्त बनवा सकता है। उसको यह नहीं सोचना पड़ता कि पहिले पैसा कमालूँ, श्रीमान् हो जाऊँ और फिर कोठी बनवाऊँ। कोठी तैयार हो जाने पर यदि उसकी इच्छा हुई कि सुन्दर सी फुलवारी भी इस कोठी के आस पास हो, तो वह भी तुरन्त तैयार हो जाती है। हर एक काम के लिये उसे पग-पग पर रुकना नहीं पड़ता। ठीक यही बात शक्तिशाली राष्ट्र के लिये भी घटित होती है। सारे प्रश्नों तथा समस्याओं का अन्तिम उत्तर शक्ति ही है। शक्ति न हो तो तुम्हारी पुकार पर कोई भी ध्यान न देगा और न कोई तुम्हारी परवाह ही करेगा। कारण वे जानते हैं कि यह दुबला जीव हमारा क्या बिगाड़ सकता है।

केवल मनुष्य ही नहीं, जानवर भी शक्ति का महत्व भलीभांति जानते हैं। सिंह को 'जङ्गल का राजा' कहते हैं। उसे देखते ही अन्य सारे जानवरों के होश उड़ जाते हैं। वास्तव में सिंह ने अपने विषय में यह कभी प्रचार नहीं किया था, कि उसको ही राजा बना दिया जाय। फिर भी सारे जीव आप ही आप मानते हैं कि वह वनराज है। छोटे-मोटे जानवर तो सिंह से डरते ही हैं, परन्तु अरण्य में रहने वाले बड़े-बड़े क्रूर जन्तु भी सिंह की गर्जना मात्र सुनकर भाग खड़े होते हैं। बिना ढिंढोरा पीटे सारे जानवर सिंह की शक्ति पहिचानते हैं, जिससे साफ पता चलता है, कि दुनियाँ में वास्तविक महत्व शक्ति का ही है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने ठीक इसी बात को पहिचान लिया है। संघ ने न तो कोई नई वस्तु पैदा की है और न उसको किसी नये काम के करने का अभिमान भी है। जिस

बात को हम भूले जा रहे थे, उसका पुनः स्मरण कराने का काम संघ कर रहा है। "दुनियाँ में शक्ति की ही पूछ है" इस सिद्धान्त को संघ ने समझ लिया है। इसीलिये शक्ति के आधार पर संघ ने यह संगठन खड़ा किया है। संघ राजनीति में नहीं उतरता, इसलिये लोग संघ को दोष देते हैं, परन्तु गुलाम राष्ट्र के लिये किसी प्रकार की राजनीति हो ही नहीं सकती, और इसीलिये हमारा राजनीति से सम्बंध होने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं हो सकता। हमें राजनैतिक बातों से करना ही क्या है? संघ तो केवल 'हिन्दुस्थान हिन्दुओं का' इस ध्येय वाक्य को सच्चा कर दिखाना चाहता है। हिन्दुस्थान देश केवल हिन्दुओं का ही है। दूसरे देशों के समान, यह हिन्दुओं का होने के कारण संघ यह मानता है कि इस देश में हिन्दू जो करेंगे, वही पूर्व-दिशा होगी। यही एक बात है जो संघ जानता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लिये और किसी भी पचड़े में पड़ने की आवश्यकता नहीं।

संघ ने जो यह सिद्धान्त जनता के सम्मुख रखा है, उसकी अब पूर्ण रूपेण विजय हो चुकी है। कल ही की बात है; यहाँ के नगर-भवन की सभा में मथुरा में दो कसाईखानों के खुलने की निन्दा करते हुए हमारे एक कट्टर कांग्रेसी भाई ने साफ साफ शब्दों में भरी सभा में कहा— "हिन्दुस्थान हिन्दुओं का ही राष्ट्र है।" उन्होंने तीन बार उपर्युक्त वाक्य का उच्चारण किया और तीनों बार उस पर तालियाँ बजीं। इससे पता चलता है कि संघ किस प्रकार विजयी हो रहा है। उसी प्रकार गत सप्ताह में नागपुर के दो प्रसिद्ध हाईस्कूलों के वार्षिक सम्मेलन के अवसर पर अध्यक्षीय अभिभाषण देते हुए लोकनायक बापूजी अणे ने भी यही विचार प्रगट किये। अपने सारांश रूप में यह कहा था कि विद्यार्थियों का कर्तव्य है कि वे जिस राष्ट्र में रहते हैं उसकी तथा अपने धर्म और सभ्यता की रक्षा की शिक्षा प्राप्त करें। मुझे इस बात की पर्वाह नहीं (वे बोले) कि परीक्षा में विद्यार्थी कितने नम्बर पाता है; परन्तु संसार के कार्यक्षेत्र में उतरने पर वह क्या करता है, इसी बात से मुझे मतलब है। देश के

नवयुवकों में आत्मसम्मान की भावना पैदा कर, देश, धर्म, एवं संस्कृति की रक्षा करने वाला तथा एक नेता की आज्ञा में एक अनुशासन के साथ कार्य करने वाला शक्तिशाली संगठन राष्ट्र के अन्दर अवश्य होना चाहिये। व्याख्यान के अंत में संघ का नामोच्चारण करते हुए उन्होंने साफ शब्दों में यह भी कहा कि "आज यदि मैं युवक होता, तो पहिले अपने को इस संघ में भर्ती करवा लेता।" इससे पता चलता है कि देश के विचारशील पुरुषों को संघ के इस संगठन की महत्ता अब प्रतीत हो रही है। यह हो सकता है कि पहिले पहल जनता संघ को न समझी हो। किन्तु अब धीरे-धीरे उसे यह जँचने लगा है कि संगठन ही राष्ट्र की एकमात्र शक्ति होती है। अतः हमें स्वयंसेवकों की संख्या द्रुत गति के साथ बढ़ानी होगी। अंग्रेजी में कहावत है "To catch time by forelock" अर्थात् अवसर प्राप्त होने पर उससे लाभ उठाने में तनिक भी देर न करनी चाहिए। यह बात अतीव महत्व की है। हम अपने जीवन का कितना ही महत्वपूर्ण समय यों ही गँवा देते है। कल्पना कीजिये कि आप सब लोग सौ वर्ष तक जीने वाले हैं। आपकी आयु जब दस वर्ष की होती है तो आपकी शेष आयु रहती है केवल ९० वर्ष की। जैसे-जैसे आपकी अवस्था बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे आपकी शेष आयु में कमी होती जाती है। याद रखिये कि आयु बढ़ती नहीं। संघ के स्वयंसेवकों को चाहिये कि अपने बहुमूल्य जीवन का एक क्षण भी व्यर्थ न गँवाते हुए संघ ने जो महान् ध्येय हमारे सामने रखा है, उसे करने के लिये वे सदा प्रयत्नशील रहें। यदि हमारी संख्या पर्याप्त मात्रा में न बढ़ी, तो वह कार्य, जो हमें करना है, हम कर न सकेंगे। हमें तो कार्य करना है समूचे राष्ट्र का, न कि किसी एक व्यक्ति का। अतएव हमें कार्य की वृद्धि इतने परिमाण में करनी होगी जो संघ के 'राष्ट्रीय' नाम को चरितार्थ कर सके।

पर केवल संख्या बढ़ाने से ही कार्य न चलेगा; अपितु स्वयंसेवकों में कार्य शक्ति के साथ-साथ कार्य-कुशलता का होना भी आवश्यक है। सब

कामों में एक-एक कदम क्रम-बद्ध उठाते हुए आगे बढ़ना चाहिये। हम प्रत्येक स्वयंसेवक का चरित्र-गठन संघ की दृष्टि से कर सकें। वह प्रतिदिन क्या करता है? उसके भाव दृढ़ होते जा रहे हैं अथवा नहीं? वह अपने मित्रों को संघ में लाता है या नहीं? आदि सब छोटी मोटी बातों में यदि आप सचेत रहें, तो क्या कार्य-वृद्धि असंभव है? संघ का कार्य स्वयंसेवक के मन में ठीक-ठीक जँच गया अथवा नहीं? यदि जँच गया है, तो वह उसके अनुसार वर्ताव करता है नहीं? और यदि करता भी है तो कितने प्रमाण में करता है? आदि सारी बातें देखनी चाहिये। प्रत्येक स्वयंसेवक के किये हुए कार्य का ठीक-ठीक मूल्य मापन हम कर सकें। यह कभी न हो कि कोई स्वयंसेवक आज अच्छी तरह काम कर रहा है और कल अपने घर चुपचाप बैठ जाता है। हमें इस ओर भी ध्यान देना चाहिये, कि किसी भी कारण से क्यों न हो स्वयंसेवक अकर्मण्य न होने पावे। यदि किसी रोज कोई स्वयंसेवक शाखा में उपस्थित न रहा, तो तुरन्त उसके घर पहुँचकर वह क्यों नहीं आया इस बात की पूछताछ करनी चाहिये नहीं तो दूसरे दिन भी वह स्वयंसेवक शाखा में न आवेगा। तीसरे दिन उसको संघस्थान पर जाने में संकोच होगा। चौथे दिन उसको कुछ डर सा मालूम होगा। और पाँचवें दिन से वह टालमटोल भी करने लग जायगा। अतः किसी भी स्वयंसेवक को शाखा से अनुपस्थित न रहने देना चाहिये।

एक गाँव में एक से अधिक उपशाखाएँ खोलने का भी यही कारण है जिससे स्वयंसेवकों का ठीक प्रकार से विभाजन होकर उनके साथ कार्यवाह का निकट परिचय तथा सम्बन्ध बढ़ता जाय। केवल एक ही शाखा के रहने से बढ़ती हुई संख्या की ओर पूरा ध्यान देना असंभव हो जाता है, जिसका परिणाम यह निकलता है कि संख्या तो बढ़ जाती है परन्तु शक्ति नहीं बढ़ती। शाखा का कार्यवाह इस दृष्टि से काम करे, तभी संघ का स्वीकृत ध्येय सफल होगा। आपके व्यवहार में शुद्धता एवं दक्षता होने पर स्वयंसेवकों की निष्ठा (intensity)

स्वयं ही बढ़ती जायगी। एक ही गाँव के भिन्न-भिन्न मुहल्लों में उप-शाखाएँ चलाने से कुछ स्वयंसेवकों के अन्दर गुट्टबाजी के अनुचित भाव पैदा हो जाने की सम्भावना होती है, जिसको हमे कुशलतापूर्वक रोकना होगा। इस बात की ओर हमारा विशेष ध्यान रहे कि स्वयंसेवकों के मन में केवल किसी खास व्यक्ति के विषय में ही श्रद्धा अथवा भक्ति उत्पन्न न हो। स्वयंसेवकों में परस्पर श्रद्धा तथा प्रेम तो अवश्य चाहिये, किन्तु वह प्रेम कार्य के लिये हो, न कि केवल व्यक्ति के लिए। केवल व्यक्ति के लिये भक्ति, तथा प्रेम होना संगठन के लिये हानिकारक है। स्वयंसेवक केवल संघनिष्ठ हो, न कि व्यक्ति-निष्ठ, शाखा-निष्ठअथवा स्थान-निष्ठ। हमें सावधान रहना चाहिये कि विघातक बात कभी न होने पाये। खूब याद रक्खो कि ये सारी बातें जो मैं कह रहा हूँ संगठन के लिये अत्यावश्यक है। इस बात की ओर ध्यान देते हुए कि जब तक हिन्दुस्थान में हिन्दू व्यक्ति को मनुष्य के नाते सम्मान के साथ जीवित रहने का अधिकार प्राप्त नहीं होता, तब तक वह यह नहीं कह सकता कि मैं संगठन के अन्दर प्रवेश कर, अपने लिए निजी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा रखूँ। प्रत्येक अधिकारी तथा शिक्षक को सोचना चाहिये कि उसका बर्ताव कैसा रहे और स्वयंसेवकों को कैसे तैयार किया जाय। स्वयंसेवकों को पूरी तौर पर संगठन के साथ एक रूप बनाकर उनमें से प्रत्येक के मन में यह विचार भर देना चाहिये कि मैं स्वयं ही संघ हूँ। प्रत्येक व्यक्ति की आँखों के सामने ध्येय का एक ही तारा सदा जगमगाता रहे, जिस पर उसकी दृष्टि और मन पूर्णतया केन्द्रित हो जायं। मैं पुनः पुनः कहूँगा कि यदि व्यक्ति-प्रेम संघ कार्य में बाधा उपस्थित करता है तो उस स्वार्थी प्रेम को एकदम दूर हटा दो। यदि किसी कारण तुम्हें सजा मिले तो उससे बचने का प्रयत्न न करो; और न किसी दोषी व्यक्ति का पक्ष ही लो। तात्पर्य यह है कि व्यक्ति-प्रेम को समूल नष्ट कर दो।

हम लोगों को हमेशा सोचना चाहिये, कि जिस कार्य को करने का

हमने प्रण किया है। और जो उद्देश्य हमारे सामने है, उसको प्राप्त करने के लिये हम कितना काम कर रहे हैं, और जिस गति से तथा जिस परिणाम में हम अपने कार्य को आगे बढ़ाते जा रहे हैं, क्या वह गति या परिणाम हमारे कार्य की तुलना में पर्याप्त है ? क्योंकि हमें तो उन्हीं साधनों तथा मार्गों से काम लेना है, जिनसे हमारा कार्य शीघ्रातिशीघ्र पूरा हो सके। नहीं तो हमारा उद्देश्य कदापि सिद्ध न होगा। जो उद्देश्य हमने अपने सामने रखा है उसे प्राप्त करने के लिए न जाने हमें कितनी शक्ति का संचय करना होगा। उस शक्ति-संचय के लिए हमें अपने कार्य की गति खूब बढ़ानी होगी। अतः प्रत्येक को अतीव त्याग करने की तैयारी कर लेनी चाहिये।

आप जानते हैं कि संघ ने इहलोक के सर्वोच्च कार्य को करने की निश्चय किया है। हमें यह नहीं सोचना है कि हमारे मर जाने के बाद हमको स्वर्ग कैसे मिलेगा, अथवा हमें वहाँ कौन से सुख मिलने वाले हैं। संघ का कार्य तो हमें इसी जीवन में संपन्न करना है। और इसलिये संघ ने सांसारिक ध्येयों में सर्वोच्च ध्येय को प्राप्त करने का निश्चय किया है इस बात को हम कभी न भूलें। प्रारम्भ में बतलाया गया है कि जैसे कोई श्रीमान् मनुष्य अपनी इच्छानुसार सुख साधन निर्माण कर सकता है, वैसे ही संगठन की बात है। ऐसी कोई भी राष्ट्रीय आकांक्षा नहीं, जो संगठन के द्वारा प्राप्त न हो सके। हम लोग हमेशा राष्ट्रीयता की दृष्टि से ही विचार करते हैं। चौबीसों घंटे वही राष्ट्रीयता के विचार हमारे मनों में गूँजते रहें, इसलिये संघ का नाम राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ रखा गया है। जिन महानुभावों को जरा भी सन्देह हो कि संगठन से आखिर कुछ काम बनता है, अथवा नहीं उन्हें मैं दावे के साथ जता दूँ कि संसार में संगठन ही ऐसी एक मात्र शक्ति है जिनके बल पर सारी राष्ट्रीय समस्याएँ हल हो सकती हैं।

अब हम अपनी गति के विषय में भी कुछ सोचें। क्योंकि बाहरी लोग हमारे स्वयंसेवकों की ओर कुछ विशेष दृष्टि से देखा करते हैं। वह

कैसा दिखता है ? कैसा देखता है ? कैसे बर्ताव करता है ? चौबीसों घंटे उसके मन में क्या चला करता है ? अपने ध्येय के सम्बन्ध में उसकी मानसिक दृढ़ता तथा तीव्रता किस सीमा तक है ? आदि बातों को बाहिरी लोग बारीकी के साथ देखते हैं। संघ को पैदा हुए आज दस वर्ष हो गये हैं। इतने दिनों में हमने कितना कार्य किया है ? और वह ध्येय-सिद्धि की दृष्टि से कहाँ तक पर्याप्त है ? परिस्थिति की कठिनता को मैं भी मानता हूँ। परन्तु जब संघ का निर्माण हुआ था उस समय भी परिस्थिति इतनी प्रतिकूल थी, कि काम करना असम्भव सा प्रतीत होता था। जब कि इस प्रकार की अत्यन्त कठिन परिस्थिति से न डरते हुए, निर्भीकता के साथ उससे हमने लगातार मुकाबला किया और बराबर काम करते रहे, तब आज ही हमारे सामने परिस्थिति की कठिनता का प्रश्न क्यों उठना चाहिए ? आज तक हमारे काम करने की जो भी गति थी वह ठीक ही थी। किन्तु अब आगे कैसे होगा ? क्या हमने आज तक जो कुछ कार्य किया, उसी को आप पर्याप्त समझते हैं। मैं निश्चय ही कह सकता हूँ कि प्रत्येक स्वयंसेवक कम से कम अपने मन में तो यही उत्तर देगा कि जितना कार्य हो जाना चाहिये था, नहीं हो पाया और न हम कर ही रहे हैं।

पिछले दिनों मेरे एक दौरे में एक बार किसी महाशय से भेंट हुई थी, जिन्हें मैंने पूछा—"क्या आपके सिर पर संघ का भूत सवार है ?" जिस पर वे महाशय मुझे उलटे पूछ बैठे—"यह संघ का भूत क्या बला है ?" मैंने उसके उत्तर में कहा—"महाशय जी, भूत तो वह बला होती है, जिससे एक बार सवार हो जाने पर मनुष्य को न कुछ दीखता है और न सूझता है। दूसरों को तो क्या, मनुष्य स्वतः को ही भूल जाता है और पूरा भूतमय हो जाता है। बस, ठीक उसी तरह जहाँ एक बार संघ का भूत किसी स्वयंसेवक के सिर पर सवार हुआ, कि वह सब कुछ भूल जाता है, यहाँ तक कि अपने आप को भी भूल जाता है, और पूरा संघमय हो जाता है। संघ के कार्य के अतिरिक्त उसको अन्य कुछ सूझता

ही नहीं।"

इस प्रकार समझाने पर बेचारे महाशय जी अपनी अड़चनों की लम्बी-चौड़ी कहानी सुनाने लगे-"क्या किया जाय? मुझे फलानी कचहरी में नौकरी करनी पड़ती है।" इत्यादि इत्यादि।

मैंने फिर उनसे पूछा—"कल्पना कीजिये कि किसी मृत व्यक्ति का भूत आपके अन्दर आ गया। तब फिर आप क्या करेंगे? फिर तो नौकरी आदि सब कुछ भूल जावेंगे या नहीं?"

महाशय जी सचमुच ही खरे दिल के थे। तुरन्त ही वहाँ से उठकर चल दिये। वे दूसरे रोज फिर मेरे पास आ पहुँचे और कहने लगे—"आपकी कही हुई बातों पर मैंने कल रात भर बहुत सोचा, किन्तु मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि जिस भूत के विषय में आपने मुझसे कल कहा था वह अभी तक मेरे सिर पर सवार नहीं हुआ है।"

उनके मन की सचाई को देखकर मुझे संतोष हुआ। उक्त घटना के कई दिन उपरान्त मैं फिर एक बार दौरा करते करते उन महाशय के गांव में पहुँचा। वे स्वयं मेरे पास आये और बताने लगे कि अब मेरे सिर पर संघ का भूत सवार हो चुका है। और वे महाशय आज असीम संघ-कार्य कर रहे हैं। स्वयंसेवक बन्धुओ! आपसे मेरी एक ही मांग है। संघ का यह भूत आप में से हर एक के सिर पर सवार हो जाय। जहाँ आपके सिर पर संघ का भूत सवार हुआ कि वह आप ही आप दूसरों के भी सिर पर सवार हो जावेगा और इस प्रकार संघ के विचार तथा कार्य में सब लोगों के तन्मय हो जाने पर कार्य करना तनिक भी कठिन नहीं रहेगा।

६—हमारा सच्चा आदर्श

मुझसे कई प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं। आज उनमें से एक प्रश्न के संबंध में थोड़ा-बहुत विवेचन करने का विचार है। वह प्रश्न यह है कि संघ का स्वयंसेवक अपने सामने क्या आदर्श रखे—तत्व या व्यक्ति? यदि उसे किसी व्यक्ति को ही अपना आदर्श मानना हो तो वह कौन हो?

आज तक हम यही कहते आये हैं कि तत्व ही सदा हमारा आदर्श होवे। परन्तु तत्व का अथवा उसका प्रतिपादन करना जितना सहज है, उसे प्रत्यक्ष आकार में लाना उतना ही कठिन है। समाज में मूर्ति-पूजा रूढ़ होने का भी तो यही कारण है। वास्तव में क्या पत्थर में भगवान हैं? अदृश्य, अस्पष्ट तथा अव्यक्त विश्वचालक शक्ति का निर्गुण और निराकार स्वरूप में पूजन करना सबके लिये संभव नहीं हुआ करता; इसीलिये उस मूर्ति को उस विश्व-व्यापी शक्ति का दृश्य स्वरूप मानते हुए लोग उसकी पूजा करते हैं। परन्तु निरी मूर्ति-पूजा तो धर्म का सार-सर्वस्व नहीं है। मूर्ति-पूजा तो इसलिये नहीं की जाती कि मूर्ति सुन्दर, सुडौल अथवा उच्चतम-कला का प्रदर्शन है; किन्तु इसलिये कि कोई विशिष्ट तत्व उस मूर्ति के रूप में दृष्टिगोचर होता है; अथवा यों कहिए कि लोग उस मूर्ति को एक विशिष्ट तत्व का प्रतीक समझते हैं। जन-साधारण को उस अव्यक्त स्वरूप का सम्यक् ज्ञान करा देने का मूर्ति-पूजा एक सुलभ साधन है।

तो हमारे लिये आदर्श व्यक्ति वही हो सकता है, जो न हमसे कभी दूर जाय और न ही हम उससे आजन्म दूर जावें। जिसे हम सद्गुणों का मूर्तिमान स्वरूप समझते हों अन्यथा जिसे सर्वथा प्रमादातीत मानते हों वही व्यक्ति हमारा आदर्श होना चाहिए। अन्यथा आदर्श माने हुए व्यक्ति से यदि कोई भूल हो जाय तो हमें कोई दूसरा आदर्श ढूँढ़ना पड़ेगा और यदि वह भी कोई गलती कर बैठे तो उसके प्रति भी हमारी श्रद्धा नष्ट हो जानी स्वाभाविक है और फिर हमें किसी तीसरे व्यक्ति को ढूँढ़ने की नौबत आ जावेगी। फलतः हमें नित्य नया आदर्श व्यक्ति खोजते रहना पड़ेगा। आदर्श व्यक्ति की कल्पना करते समय किसी ऐसे ही व्यक्ति का चुनाव करना योग्य होगा, जिसमें किसी प्रकार के दोष न हों। इतना ही नहीं हम जिन गुणों को आदर्श मानते हैं वे सारे गुण उस व्यक्ति में हमें दिखाई पड़ें।

आप सभी को विदित ही है कि गुरुपूजा के दिन हम ध्वज को गुरु

मानकर उसकी पूजा करते हैं। हम किसी व्यक्ति की पूजा नहीं करते, क्योंकि हम किसी भी व्यक्ति के बारे में यह विश्वास नहीं दिला सकते कि वह अपने मार्ग पर अटल ही रहेगा। केवल तत्व ही अटल पद पर आरूढ़ रहा करते हैं। अथवा ध्वज अटल है। जिस ध्वज को देखते ही हमारे राष्ट्र का समस्त इतिहास, संस्कृति एवं परम्परा हमारी आँखों के सामने खड़े हो जाते हैं, जिसको देखते ही हमारे हृदय की भावनाएँ उमड़ पड़ती हैं, तथा हृदय में एक विशिष्ट स्फूर्ति का संचार हो जाता है, ऐसे भगवा ध्वज को, अपने तत्वों का प्रतीक होने के कारण, हम अपना गुरु मानते हैं। यही कारण है कि किसी भी व्यक्ति को अपना गुरु मानने की संघ की तनिक भी इच्छा नहीं है।

यदि तत्व को आदर्श रूप में निभा सकें, तब तो फिर कहना ही क्या ? परन्तु यदि विशुद्ध एवं निर्विकार भाव से तत्व की पूजा करना असम्भव हो तो उन तत्वों के प्रतीक स्वरूप, सद्‌गुणों से युक्त व्यक्ति को ही अपने गुरु-स्थान पर रखें। किन्तु वह व्यक्ति हो ऐतिहासिक। क्योंकि यदि हम वैदिक अथवा पौराणिक काल के किसी व्यक्ति को अपना आदर्श मानें तो उसकी ऐतिहासिकता के संबंध में कई शंकाएँ-कुशंकाएँ उपस्थित की जाती हैं। जैसे—क्या सचमुच ऐसा कोई व्यक्ति संसार में रहा होगा ? अथवा यह कोरी कविकल्पना ही है। सच पूछो तो राम को आदर्श अथवा कृष्ण को गुरु मानने के संबंध में शंका उपस्थित होने की कोई जगह नहीं है, फिर भी हाल ही के इतिहास के किसी ऐसे संशयातीत तथा दोषरहित, महान् एवं प्रभावी विभूति को ही आदर्श चुनना अधिक श्रेयस्कर है।

महान् पुरुषों के संबंध में कुछ विकृत धारणाएँ समाज में रूढ़ हो गई हैं। श्रीकृष्ण ने अपने जीवन में ऐसे महान् कार्य किये हैं कि उनके कारण उन्हें आदर्श माना जाना चाहिए। किन्तु श्रीकृष्ण ने अपने जीवन में जो अद्‌भुत कार्य किये हैं, वे हमारे हाथों होने असम्भव हैं; वे देव थे, पूर्णावतार थे, देवताओं का अनुकरण मनुष्य से होना संभव ही नहीं, आदि

ऐसी ही कुछ विकृत धारणायें हमारे समाज में रूढ़ हैं। श्रीकृष्ण के समान पूर्ण पुरुष को ईश्वर अथवा अवतार की श्रेणी में ढकेलकर हम ऐसी धारणा कर लेते हैं कि उनके गुणों का अनुशीलन हमारी शक्ति के परे है। श्री रामचन्द्र जी या श्री कृष्णचन्द्र जी की पूजा करने का अथवा रामायण, महाभारत, गीता जैसे श्रेष्ठ ग्रन्थ पढ़ने का उद्देश्य गुणग्राहकता नहीं होता; केवल पुण्य-संचय की मूढ़ कल्पना से ही इन ग्रन्थों के पाठ किये जाते हैं यह कितनी बड़ी भूल है!

मेरी सदा की प्रथा के अनुसार मैं यहाँ भी एक छोटा सा उदाहरण बता दूं। किसी समय हमारे यहां एक परिचित मेहमान पधारे। वे प्रतिदिन नियमपूर्वक स्नान संध्या करने के उपरान्त अध्यात्म-रामायण का एक अध्याय पढ़ा करते थे। एक दिन की बात है कि मैंने भोजन करते समय उनसे पूछ ही तो लिया, "आपने जो अध्याय पढ़ा, उसका अनुशीलन तो आप करेंगे ही" इतना सुनना था कि बस वे बौखला उठे और क्रोध से संतप्त होकर बोले "आप रामचन्द्रजी और भगवान का उपहास करते हैं? भगवान के गुण क्या कभी मनुष्य में आ सकते हैं? हम लोग गुण-ग्रहण करने की दृष्टि से नहीं, अपितु पुण्य-संचय और मोक्ष-प्राप्ति के लिये ग्रंथ-पाठ करते हैं।"

हिन्दू जाति की अवनति के जो अनेकानेक कारण हैं, उनमें से उपर्युक्त भावना भी एक प्रधान कारण है। वास्तव में हमारे धर्म-साहित्य में एक से एक बढ़कर ग्रन्थ हैं। हमारा गत इतिहास भी तो अत्यन्त महत्वपूर्ण, वीर रस प्रधान तथा स्फूर्तिदायक है। परन्तु कभी उस पर योग्य रीति से विचार करना सीखा ही नहीं। जहाँ कहीं भी कोई कर्तृत्व-शाली या विचारवान व्यक्ति उत्पन्न हुआ कि बस हम उसे अवतारों की श्रेणी में ढकेल देते हैं; उस पर 'देवत्व' लादने में तनिक भी देर नहीं लगाते। इस कारण यह भ्रममूलक धारणा रखते हुए कि देवताओं के गुणों का अनुशीलन मनुष्य शक्ति से परे है, हम उनके गुणों को कभी भी अपने आचरण में नहीं लाते। यहाँ तक कि अब तो श्री शिवाजी और

लोकमान्य तिलकजी की गणना भी अवतारों में की जाने लगी है। शिवाजी महाराज को तो शंकर का अवतार समझने ही लगे हैं और शिवचरित्र (शिवाजी के चरित्र) में इसी के समर्थन में एक उल्लेख भी पाया जाता है। वास्तव में लोकमान्यजी तो हम लोगों के समय में हुए हैं परन्तु मैंने एक बार ऐसा चित्र देखा था जिसमें उन्हें चतुर्भुज बनाकर उनके हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म दे दिये गये थे। निस्संदेह इस तरह अपनी महान् विभूतियों को देवताओं की श्रेणी में ढकेल देने की सूझ की बलिहारी है। महान् विभूति के देखने भर की देर है कि रख ही तो दिया उसे देवालय में! वहाँ उसकी पूजा तो बड़े मनोभाव से होती है, किन्तु उसके गुणों के अनुकरण करने का नाम तक नहीं लिया जाता। तात्पर्य यह है कि इस तरह अपने पर आने वाली जिम्मेदारी जान-बूझकर टाल देने की यह अनोखी कला हम हिन्दुओं ने बड़ी खूबी से अपना ली है।

अतः हमें ऐसे ही व्यक्ति को आदर्श मानना चाहिये जो कि प्रमाणातीत हो तथा जिसके गुणों का अनुकरण हम कर सकते हों। इस दृष्टि से यदि हम हाल ही के इतिहास को देखें तो हमारी आँखों के सामने एक ही महान् व्यक्ति आता है और वह है श्री छत्रपति शिवाजी महाराज। मैं इस बात पर जोर नहीं देता कि आप उन्हें अथवा और किसी व्यक्ति को ही अपना आदर्श मानें। यदि तत्व को अपना आदर्श मानना हो तो फिर कहना ही क्या है? किन्तु यदि आपका विचार किसी व्यक्ति को अपना गुरु मानने का हो तो श्री छत्रपति शिवाजी महाराज जैसा व्यक्ति अन्यत्र दुर्लभ है। क्योंकि छत्रपति के गुरु श्री समर्थ रामदास स्वामीजी ने स्वयं जनता से कहा है कि शिवाजी को ही आदर्श मानो। "शिवरायाचे आठवावे रूप, शिवरायाचा आठवावा प्रताप" अर्थात् श्री शिवाजी के स्वरूप का ध्यान करना चाहिये और उन्हीं के प्रताप का स्मरण भी करना चाहिये। ये हैं श्री रामदास स्वामीजी के वचन! शिवाजी महाराज इतने "प्रशस्तः श्रेयान् श्रेष्ठः" थे कि समर्थ रामदास जी को केवल वे ही जनता के लिये

योग्य आदर्श प्रतीत हुए। शिवाजी महाराज को आदर्श मानने से हमें उनके द्वारा हिन्दुत्व की रक्षा करने के हेतु किये गये सभी पराक्रमों का स्मरण हो आता है; क्योंकि जो स्फूर्ति हमें भगवा ध्वज के दर्शनों से प्राप्त होती है वही स्फूर्ति श्री छत्रपति शिवाजी महाराज के चरित्र से मिलती है। जो भगवा ध्वज धूल में मिल चुका था, उसी को एक बार पुनः ऊँचा फहराकर उन्होंने हिन्दूपद-पादशाही की प्राणप्रतिष्ठा की और नष्ट-प्रायः हिन्दुत्व को पुनर्जीवित किया। अतएव यदि आप किसी व्यक्ति को ही आदर्श मानना चाहें तो श्री शिवाजी को ही अपना आदर्श रखें। अभी तक वे पूर्णतया भगवान के अवतारों की श्रेणी में नहीं ढकेले गये हैं। इसीलिये भगवान बना दिये जाने के पूर्व ही उन्हें आदर्श व्यक्ति मानकर अपने सामने रखिये।

अब यह प्रश्न ही नहीं उठता कि संघ के 'च' अथवा 'य' जैसे अधिकारियों में से किसे आदर्श समझा जाय? वे कदाचित पूर्णतया दोष रहित हों और मैं तो यह भी मानता हूँ कि हममें से कितनों ही में शिवराज के गुणों को अपने में आत्मसात् करने की भी पात्रता होगी। किन्तु फिर भी, अभी 'च' अथवा 'य' अविकसित कलियाँ ही हैं। अतः प्रफुल्लित पुष्पों को ही हम अपने सामने आदर्श रूप में स्वीकार करें; क्योंकि यदि कदाचित अर्धोन्मीलित कलिका में कीड़ा हुआ तो हमें निराश होकर हाथ मलते हुए रह जाना पड़ेगा। जो कुसुम पूरा-पूरा खिल चुका हो, जो स्पष्टतया शुद्ध और कृमि रहित दिखाई पड़े, तथा जिसके अंतरंग एवं बहिरंग को हम पूर्णतया देख सकते हों, ऐसे सुमन को ही आदर्श रखने से हमारे कार्य-कुसुम में नव चैतन्य की अधिकाधिक बहार आती रहेगी। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जिसका जीवन सुमन खिला हुआ है, जो बिल्कुल स्पष्ट तथा अत्यन्त पवित्र है और जिसका ध्येय चिर सत्य ही है, ऐसे पुरुष को ही आप अपना आदर्श निर्धारित करें। यदि आप तत्व के स्थान में किसी महात्मा को ही अपना आदर्श निश्चित करना चाहें तो उस योग्य श्री शिवाजी महाराज के अतिरिक्त अन्य कोई न मिलेगा, इतना

ही मैं कहना चाहता हूँ ।

७—त्रयोदश वार्षिक सिंहावलोकन

गत तेरह वर्षों से हम लोग संगठन का कार्य कर रहे हैं । इसका प्रारम्भिक स्वरूप बहुत छोटा था । नदी का उद्गम भी बहुत छोटा रहता है; परन्तु जैसे-जैसे वह आगे बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे उसका प्रभाव अधिकाधिक विस्तृत होता जाता है । तेरह वर्ष पूर्व जब हम लोगों ने संगठन का प्रारम्भ किया था; उस समय समाज की बड़ी विकट परिस्थिति थी । सभी लोगों के हृदय में अपने अपने राष्ट्र की समस्याओं को हल करने की चिन्ता थी; किन्तु उनकी विचार धाराएँ भिन्न-भिन्न दिशाओं में बह रही थीं । राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की विचार धारा स्वीकार करने का साहस उनके हृदय में न था । "हिन्दुओं का हिन्दुस्थान" कहने में साधारण जन तो क्या बड़े-बड़े नेता भी हिचकिचाते थे । इतना ही नहीं वे तो इस कल्पना के पुरस्कर्ताओं की गणना मूर्खों अथवा देशद्रोहियों में करना ही जानते थे । परन्तु हमारी अपने तत्व पर पूर्ण श्रद्धा थी । हमें अपने इस सिद्धांत की सत्यता पर पूर्ण विश्वास था । 'इच्छा करने से फल सिद्धि होती है' इस न्याय से प्रेरित होकर कार्य करते हुए हम लोग सद्यः स्थिति को प्राप्त हुए हैं । इस वर्ष की हिन्दु-महासभा के अधिवेशन पर दृष्टिपात करने से हम देखते हैं कि वह आज तक के सभी अधिवेशनों से बढ़कर रहा है । भिन्न-भिन्न प्रांतों के बड़े बड़े नेता इस स्थान पर एकत्र हुए हैं । मद्रास प्रांत को छोड़कर शेष सभी प्रांतों से लोग बहुत बड़ी संख्या में इस अधिवेशन के लिये उपस्थित हुए हैं । और प्रमुखता से दृष्टिगोचर होने वाली बात यह है कि 'हिन्दू राष्ट्र' तथा 'हिन्दुस्थान हिन्दुओं का है'—इस कल्पना से सारा वातावरण गूंज रहा है । श्री० पद्मराज जी जैन ने एक बार तो यहाँ तक कह दिया कि 'हिन्दुस्थान हिन्दुओं का है' । यह तत्व आधुनिक अथवा नवीन कल्पना न होकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्य के फलस्वरूप सर्वमान्य हो गया है । 'हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयत्व' यह कल्पना लोगों के हृदय में बद्धमूल हो रही

है। क्या यह हम लोगों की दृष्टि से महत्वपूर्ण विजय नहीं है।

परन्तु हमें इस बात का ठीक-ठीक स्मरण रखना चाहिये कि केवल किसी विचार धारा की विजय से कोई प्रत्यक्ष कार्य नहीं हुआ करता। हम लोग यह न समझ बैठें कि लोगों के तत्व प्रणाली मान्य कर लेने से ही हमारा कार्य पूरा हो जाता है। यह बिलकुल सत्य है कि हिन्दुस्थान हिन्दुओं का है तथा हिन्दू ही उसके मालिक हैं। परन्तु क्या इसके साथ ही साथ इन तत्वों को कार्य रूप में परिणत करने की जिम्मेदारी हम पर नहीं आती? क्या इन्हें प्रत्यक्ष आचरण में लाना हमारा ही काम नहीं है? अपना अभीष्ट सिद्ध करने के लिए अनुकूल परिस्थिति निर्माण करने का दायित्व हम पर ही है, क्योंकि जब इस प्रकार की अनुकूल परिस्थिति निर्माण हो जायगी तभी हम अपना तत्व कार्यरूप में परिणत करने में सफल हो सकेंगे। इसी हेतु से हम लोगों ने संगठन को दृढ़ता पूर्वक अपनाया है तथा इसी हेतु से हम लोग संघ का बीज देश के कोने-कोने में बो देने का जी तोड़कर प्रयत्न कर रहे हैं। समस्त हिन्दू-समाज संगठित स्वरूप को प्राप्त करके अपने पैरों पर खड़ा रहे, इसी एक बात के लिए हम लोगों ने अपना सारा जीवन लगा देने का संकल्प किया है। अतएव हमें अपने दायित्व तथा कार्य की गंभीरता को अवश्य ही स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए।

हमारे कार्य को आरम्भ हुए तेरह वर्ष पूरे हो चुके हैं। इस अवधि में हमारे कार्य का विस्तार काफी हो चुका है। अब लोग हमारी बातों पर ध्यान देने को तैयार हो गए हैं और उन्हें मानने भी लगे हैं। वे हमारे कार्य का स्वागत करने को तैयार हैं। यह सब तेरह वर्षों के कार्य का फल है। परन्तु तेरह वर्ष की अवधि थोड़ी नहीं है। ठीक-ठीक विचार करने से हममें से प्रत्येक स्वयंसेवक देख सकता है कि इस एक तप की अवधि में अपेक्षाकृत बहुत ही थोड़ा काम हुआ है। यदि केवल हमें अपनी विचार प्रणाली लोगों में प्रचलित तथा मान्य कराने में तेरह वर्षों का सुदीर्घ काल लग जाता है, तो हम यह अवश्य सोचें कि इसी हिसाब से प्रत्यक्ष

संगठन करने, हृदय में भावनाओं की ज्योति जगाने, अपने कार्य का अभेद्य दुर्ग निर्माण करने तथा उसमें पूरी सफलता प्राप्त करने के लिए कितने वर्षों तक हम काम करते रहेंगे ? इस सरल त्रैराशिक की रीति से हिसाब लगाओ तो आप इस बात की कल्पना सहज में ही कर लोगे कि यदि इसी गति से काम चालू रहा तो पूर्ण यश प्राप्ति के लिए कितना लम्बा समय लगेगा। और तब कार्य की गति बढ़ाने की आवश्यकता का आप निःसंदेह अनुभव करेंगे।

कई लोग यह कहते फिरते हैं कि संघ के स्वयंसेवकों का काम त्यौहारों के समय खाकी गणवेश पहिन कर लेफ्ट-राइट करते हुए घूमना मात्र है। उनकी समझ में संघ कोई ठोस काम नहीं करता। स्पष्ट है कि उनका यह आक्षेप अज्ञान मूलक ही है। दूर से संघ के सम्बन्ध में विचार करने के कारण ही वे इस प्रकार के आक्षेप किया करते हैं। उनकी शंका का निराकरण करने का केवल एक ही उपाय है कि हम उनका हृदय अपनी ओर आकर्षित कर उन्हें संघ से एक रूप बना दें। हम इस महान् कार्य के प्रति, जो हमारे जीवन का एकमेव कार्य है, अविचल निष्ठा रखें। अपने ध्येय को हम हृदय-पटल पर अंकित कर लें। हमें समूचे हिन्दू-समाज में नव चैतन्य तथा निर्भय वृत्ति उत्पन्न करनी है। हमें सामाजिक शक्ति निर्माण करके समाज के प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में स्वाभिमान तथा आत्म-विश्वास जागृत करना है। दूसरे समाजों में प्रत्येक व्यक्ति को यह विश्वास रहता है कि उसका समाज उसकी सहायता के लिए कटिबद्ध है। हमें भी अपने समाज के प्रत्येक घटक में ठीक वैसा ही विश्वास निर्माण करने का जी-जान से प्रयत्न करना है। इतना ही नहीं, सारा संसार अनुभव करने लगे। यह काम बहुत बड़ा है। इसे पूरा करने के लिए हमें प्रयत्न की पराकाष्ठा करनी होगी। यही सोचते हुए हमने इसी कार्य के प्रति अपनी सारी शक्तियाँ केन्द्रीभूत करने का संकल्प किया है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने खूब सोच समझ कर अपना कार्यक्षेत्र निर्धारित किया है और इसलिए वह अन्य किसी कार्य के झमेले में नहीं पड़ना चाहता। अपने

ध्येय पर दृष्टि रखते हुए हमें अपने निश्चित मार्ग पर अग्रसर होना है। हममें रात दिन केवल इसी बात का विचार बना रहे कि हमारे जीवन का प्रत्येक क्षण इस पवित्र काम के लिए किस प्रकार खर्च हो सकेगा। साथ ही साथ हमें ऐसे विचारों के अनुरूप आचरण करना भी सीखना चाहिए। हमें सतत इसी बात की लगन लगी रहनी चाहिए कि हमारा संगठन प्रतिक्षण किस प्रकार बढ़े। यदि संगठन केवल कहने भर के लिए अथवा दिखाऊ हो उसमें कोई लाभ नहीं हो सकता। कोरे आडम्बर से कभी सफलता प्राप्त नहीं हुआ करती। यह तो केवल ढोल के अन्दर की पोल वाली बात होती है। कार्य ठोस हो तभी वह टिक सकता है। इसीलिए हमें अपने कार्य में तेज, दृढ़ता तथा तीव्रता निर्माण करने का प्रयत्न करना चाहिये। इन गुणों का निर्माण करने में तभी सफलता मिल सकेगी, जब हम अपने कार्य की गति कई गुना वेग से बढ़ाने का यत्न करेंगे। गत बारह वर्षों में हमने जिस उत्साह तथा परिश्रम से काम किया है, वह उत्साह और वह परिश्रम अब कई गुना बढ़ जाना चाहिये। यद्यपि यह सत्य है कि अब हमारी लगभग चार सौ शाखाएँ तथा चालीस हजार स्वयंसेवक हैं; किन्तु फिर भी इसके साथ ही, क्या हमें इसका विचार न करना चाहिये कि उनमें कार्य प्रसार करने वाले कितने हैं? हमें यह तो स्वीकार ही करना होगा कि इन चालीस हजार में से तत्परता से स्वयंमेव कार्य करने वालों की संख्या जितनी होनी चाहिये, उतनी नहीं है। जितनी ही अधिक संख्या में ऐसे कार्यकर्ता निर्माण होंगे, उसी हिसाब से हमारे कार्य की प्रगति होगी। अतएव हमें इसके लिए प्रयत्न करना चाहिये।

कुछ लोग पूछते हैं कि संघ में हमारा क्या काम है? प्रौढ़ लोग कहते हैं, कि संघ में आकर हम से क्या हो सकता है? परंतु यह समझना भूल होगी कि किसी विशिष्ट योग्यता अथवा उम्र का ही मनुष्य संघ के लिये उपयोगी है तथा जो वैसा न होगा वह संघ के लिये निरुपयोगी है। संघ के कार्य-क्षेत्र में प्रत्येक की आवश्यकता है और प्रत्येक के लिये यहाँ काम है। क्योंकि संघ-कार्य एक व्यक्ति का न होकर

समाज के सभी व्यक्तियों का है। यहाँ जो और स्वयंसेवक उपस्थित हैं, उनके सामने भी किसी समय यह समस्या थी, किन्तु एक बार संघ कार्य में हाथ डालते ही उन्हें अपना काम मालूम हो चुका है। वयोवृद्ध लोगों को तो संघ के कार्य में काफी महत्व का स्थान है। वे भी संघ में महत्वपूर्ण कार्य का दायित्व उठा सकते हैं। यदि सयाने लोग अपनी प्रतिष्ठा तथा व्यवहार-कुशलता का उपयोग संघ-कार्य के हेतु करें तो युवक लोग अधिकाधिक उत्साह से कार्य कर सकेंगे। उनके मार्ग प्रदर्शन से युवकों की शक्ति कई गुना बढ़ जाती है तथा संघ-कार्य भी अपने निश्चित ध्येय की ओर वेग से बढ़ता चला जाता है। इसलिए किसी को भी संघ के प्रति उदासीनता रखने का कोई कारण नहीं है। प्रत्येक को उत्साह तथा हिम्मत से आगे आकर कार्य में जुट जाना चाहिये।

यदि सब लोग इस प्रकार काम करने लग जावें तो हमारा कार्य बड़ी शीघ्रता से बढ़ेगा। क्योंकि यह समय हमारे कार्य के लिये बड़ा अनुकूल है। आज जैसी अनुकूल परिस्थिति पहिले कभी न थी। हमें इस सुअवसर का पूरा-पूरा लाभ उठा लेना चाहिये। अब यदि हम लोग किसी भी प्रांत में जावें, तो वहाँ हमारे कार्य का स्वागत होता है। क्योंकि संघ की आवश्यकता सब जगह प्रतीत होने लगी है। आज ही प्रातःकाल दूसरे प्रांतों से आये हुए प्रमुख-सज्जनों की बैठक अपने शिविर में हुई तथा उनसे विचार विनिमय हुआ, यह तो आप जानते ही होंगे। सभी बड़े-बड़े लोगों ने हमारे कार्य की अत्यन्त प्रशंसा की तथा अपनी कृति से यह सिद्ध कर दिया कि उन्होंने इसका महत्व भली-भांति जान लिया है। दो या तीन लोगों को छोड़ शेष सभी यथा-विधि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सदस्य बन गये हैं। यह बात बहुत महत्व रखती है, क्योंकि उन्होंने अपनी इस कृति के द्वारा कार्य करने का निश्चय प्रकट किया है। भिन्न भिन्न प्रांतों के लोग मानों हमें निमन्त्रण दे रहे हैं। अब उन्हें आवश्यकता है, केवल हमारे नेतृत्व की। ये संघ के द्वारा दर्शाए हुए मार्ग पर चलते हुए हमारे जैसा कार्य करने को उत्सुक हैं। अतएव, यदि हम में से सभी वृद्ध तथा तरुण

इस कार्य-क्षेत्र में कूद पड़ें तो सभी के सम्मिलित प्रयत्नों से हमारा कार्य सब जगह फैल सकेगा तथा इन दूसरे प्रांतों में रहने वाले अपने इन भाइयों के प्रस्तुत उत्साह से हम पूरा-पूरा लाभ उठा सकेंगे।

प्रौढ़ लोग तो प्रांत के बाहर जाकर काम कर ही सकते हैं; किन्तु अपने साथ तरुणों को भी दूसरे प्रांतों में कार्य करने को प्रवृत्त करें। तरुण भी स्वयंस्फूर्ति से दूसरे प्रांतों में कार्य करने का सुअवसर न गँवाये। वे अपनी पढ़ाई का काम करते हुए संघ का भी काम सुचारु रूप से कर सकते हैं। जिन लोगों को दोनों बातें अनायास ही साध्य हों, उनमें कोई भी दूसरे प्रांतों में जाने से पीछे न रहे। संघ के नित्य नैमित्तिक सभी कार्य-क्रमों से तथा ओ० टी० सी० की शिक्षा से लाभ उठाकर, आप संघ के सभी कामों में पारांगत हो जायें। संघ कार्य सुचारु रूप से करने के हेतु आप लोग उसमें उपस्थित होने वाली छोटी-मोटी कठिनाइयों में से राह निकालना सीखें, तथा इस प्रकार की शिक्षा पाकर शीघ्रातिशीघ्र इस कार्य के प्रसार के लिये घर से बाहर निकलें, अपना गाँव छोड़े, अपने प्रांत के बाहिर पाँव रखें।

साथ-साथ आप इसका भी ध्यान रखें कि आपके स्थान तथा आपके प्रांत में संघ का कार्य जितना ही ठोस तथा गहरी नींव पर स्थित रहेगा, उसी प्रमाण में चारों ओर अपने कार्य के विस्तार की गति होगी। अतएव स्थानिक संघ-कार्य ही संघ के भावी कार्य-विस्तार की नींव है। आप अपने मित्रों को संघ में लावें तथा इस बात की सतर्कता रखें कि एक बार संघ में प्रवेश कर चुकने पर कोई भी व्यक्ति संघ से दूर न जाने पावे। आपने हौज और नल संबंधी सवाल विद्यार्थी दशा में किये होंगे। उस समय आपको यह सोचना पड़ा होगा कि हौज में पानी भरने वाले तथा उसे खाली करने वाले नल लगे रहने पर हौज कितने समय में भरेगा। परन्तु संघ के कार्यकर्ताओं को इस प्रकार का सवाल हल करने की नौबत न आने पावे। संघ का हौज सदा भरता ही जाना चाहिये। जहाँ एक बार पानी हौज में आया कि बस, वह बाहिर न जाने पावे।

हममें इतना आत्मविश्वास और इतनी आकर्षण शक्ति होनी चाहिये कि जहाँ कोई एक बार हमारे बीच आया कि वह हमारा ही हो गया—हमसे दूर होने का नाम भी न ले।

जो लोग कल के कार्यक्रम के समय उपस्थित थे उन पर बड़ा आश्चर्य-कारक परिणाम हुआ। इस दृश्य का प्रत्येक के हृदय पर स्थायी प्रभाव पड़ा है। प्रत्येक के हृदय में यह अभिलाषा जागृत हुई कि उसके प्रांत में भी ऐसा ही संघ स्थापित हो। यों कहिये कि अनायास ही सारे देश में इस कार्य के विस्तार का उपक्रम यशस्वी हो गया। इसका सारा श्रेय आप लोगों पर ही है। बाहिर कहीं न जाते हुए, यहीं बैठे-बैठे लोगों के हृदय पर आप अपने कार्य की छाप डाल सके हैं। परन्तु इससे पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिये अब हमें अन्यान्य प्रांतों में जाना ही होगा।

आप पूर्ण विश्वास रखें कि इस दृष्टि से कार्य करते हुए हम अवश्य ही विजयी होंगे। हमारा कार्य दिन दूना रात चौगुना बढ़ रहा है। सभी लोग यह स्वीकार करते हैं कि हमारी प्रगति होती जा रही है। पूना का ही उदाहरण लीजिये। पूना की संघ-शाखा ने अल्प काल में जो प्रगति की है उसे देख स्वयं पूना के लोग दाँतों तले अंगुली दबा रहे हैं। आप यह अच्छी तरह याद रखें कि हमारा निश्चित और स्पष्ट ध्येय ही हमारी प्रगति का मूल कारण है। संघ के आरम्भ से हम लोगों ने एक ही उद्दिष्ट अपने सामने रखा है। हमारी भावनाएँ ध्येय के समरस हो गईं हैं; हम कार्य से एक रूप हो गये हैं। जब पूना में संघ की शाखा स्थापित हुई, उस समय एक बैठक में संघ पर अनेक आक्षेप किये गये और उनके यथोचित उत्तर भी दिये गये। उनमें से एक आरोप यह था कि संघ के सदस्य होने के उपरान्त लोग अपने अन्य सभी व्यवहार भूल जाया करते हैं। यह सुनकर मुझे बड़ा आनंद हुआ। मैंने कहा कि इसके पहिले कि आपके सारे आक्षेप निर्मूल हैं, किन्तु मैं मानता हूँ कि आपका यह आक्षेप बिल्कुल ठीक है; क्योंकि यह आरोप अक्षरशः सत्य है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का सदस्य संघ की शुद्ध तत्व प्रणाली में तल्लीन हो

जाता है तथा उसे अपने निजी व्यवहार और व्यक्तिगत काम-काज की सुध नहीं रहती। संघ की विचार प्रणाली का आकलन कर लेने पर स्वयंसेवक आप ही आप, संघ के अतिरिक्त अन्य सभी बातों से दूर हटता जाता है। यही संघ की सफलता का रहस्य है। आप जितना अधिक संघ से समरस होने का प्रयत्न करेंगे, उतने ही वेग से हमारे कार्य की प्रगति होगी। अतएव आप ऐसा ही बनने का निश्चय करें। स्वयं आप संघ से एकात्म होकर अपने अन्य बन्धुओं को भी वैसा बनाने का प्रयत्न करें। आप लोगों को सदा इसी बात की चिन्ता होनी चाहिये कि यह कार्य शीघ्रातिशीघ्र कैसे बढ़े तथा उसी के अनुरूप आप भरसक उत्साह और तीव्रता से कार्य में जुट जावें तथा तल्लीन होकर कार्य करें। ऐसा करने से निश्चय ही विजयश्री आपको जयमाला पहिनावेगी।

८. चेतावनी

व्यक्ति के जीवन में जिस प्रकार नानाविधि बाधाएँ आती हैं, उसी प्रकार संघ के जीवन में भी बाधाओं की कमी नहीं। परन्तु बाधाएँ चाहे जितनी आवें, संघ का कदम तो आगे बढ़ना ही चाहिये। मेरी अटल श्रद्धा हो गई है कि हम पर भगवान की कृपा सदा बनी रही है और आगे भी बनी रहेगी; क्योंकि भगवान हमारे हृदय के भावों को ठीक-ठीक जानते हैं। हमारा हृदय पवित्र और शुद्ध है। हममें पाप का लवलेश भी नहीं। 'हिंदू जाति की सेवा करना' इसी एक भाव से हमारा अंतःकरण तथा रोम-रोम परिपूर्ण है। अन्य किसी विचार के लिए हमारे हृदय में अवकाश ही नहीं। फिर भगवान की कृपा हम पर क्यों न हो? आज इतनी अधिक अनुकूल परिस्थिति है कि हमारे कार्यकर्ता जहाँ भी पहुँच जाते हैं, सफलता ही पाते हैं। हमारा उद्देश्य और कार्य नितान्त पवित्र तथा जनकल्याणकारी होने के कारण ईश्वरीय है, और यही कारण है कि हर समय तथा हर परिस्थिति में हम अवश्य सफल होंगे।

किस ध्येय सिद्धि के लिए हमने कमर कसी है? हम बस यही चाहते हैं कि हमारा पवित्र हिन्दू धर्म तथा हमारी प्रिय हिन्दू संस्कृति संसार में

गौरव के साथ चिरजीवन प्राप्त करे। हमारा धर्म तथा संस्कृति कितनी भी श्रेष्ठ क्यों न हो, जब तक उनकी रक्षा के लिए हमारे पास आवश्यक शक्ति नहीं है, तब तक वे जग के आदर के योग्य नहीं होंगे। हम शक्ति-हीन हैं, इसी कारण हमारा धर्म और हमारी जाति आज इस दीन-हीन दशा को पहुँची हुई नजर आती है। सब कुछ होते हुए भी अंत में प्रश्न उपस्थित होता है शक्ति का ही। प्रकृति का नियम है, 'जीवो जीवस्य जीवनम्' अर्थात् दुर्बल लोग बलवानों के भक्ष्य होते हैं। संसार में दुर्बलों के लिए गौरव का जीवन असम्भव है। उन्हें तो बलवानों का दास होकर ही रहना पड़ता है। अखंड अपमान और कष्ट से परिपूर्ण असह्य जीवन ही उनके भाग्य में बदा होता है। क्यों हम पर लगातार सदियों से विदेशी आक्रमणों का तांता लगा हुआ है? हम दुर्बल, गये बीते से हो गये हैं, इसलिये न? हमारी यह शक्ति-हीनता ही हमारी सब विपत्तियों की असली जड़ है, जिसे हमें पहिले उखाड़ कर फेंक देना होगा। जब तक हम निर्बल रहेंगे, तब तक निसर्ग नियमानुसार बलवानों की हम पर आक्रमण करने की इच्छा अवश्य होती रहेगी। केवल बलवानों को गालियाँ देने या उनकी निन्दा करने से क्या लाभ? ऐसा करने मात्र से परिस्थिति हेर-फेर नहीं हो सकती। यदि हम शक्तिशाली होते तो क्या किसी की हिम्मत होती कि वे हम पर आक्रमण करने का दुःसाहस करते? या हमें अन्य किसी तरह से अपमानित करते? फिर हम क्यों दूसरे को दोष दें। यदि दोष हमारा ही है तो उसे स्वीकार कर हमें अपनी कमजोरियों के दूर करने में प्रयत्नशील हो जाना चाहिए। हम पर आज तक जितने भी आक्रमण अथवा अन्याय हुए और आज भी हो रहे हैं, उनका उत्तर एक ही हो सकता है—हम प्रचंड शक्तिशाली बनें।

यह शक्ति हम केवल संगठन के ही द्वारा उत्पन्न कर सकते हैं; अन्य किसी मार्ग से हम यह शक्ति पैदा नहीं कर सकते। आज भी हमारी हिन्दू जनसंख्या का पलड़ा बहुत भारी है। संसार की कुल जनसंख्या का पाँचवाँ हिस्सा है। इतनी विशाल जनता जन संगठित हो जावेगी, तब

उसको ओर तिरछी निगाह से देखने का साहस संसार की किसी भी शक्ति को न होगा। विश्वास कीजिए, हिन्दू शक्ति सारे संसार में अजेय सिद्ध होगी।

हमें बलवान होने की इच्छा है, और शक्ति-सम्पादन का एकमेव मार्ग कौनसा है, यह भी हम जान चुके हैं। किन्तु केवल इच्छा और ज्ञान से हम बलवान नहीं होंगे। उसके लिए तो आवश्यकता है लगातार कर्म करने की। संगठन सिद्धान्त को हम अपने बर्ताव में लायें, तभी हममें शक्ति पैदा हो सकती है; अन्यथा नहीं। शक्ति बातों में नहीं, कृति में हुआ करती है। इसलिए हमें प्रत्यक्ष कृति करनी चाहिए। कितने भी व्याख्यान हम सुनें या सुनायें, जब तक इन व्याख्यानों के अनुसार हमारा व्यवहार नहीं होता, हमें ध्येय-सिद्धि की भूल कर भी आशा न करनी चाहिए।

हमारा संगठन अभी उचित परिमाण में नहीं बढ़ रहा है। इससे अनुमान होता है कि हम लोगों में अवश्य ही कुछ खास दोष हैं, जो हमारे कार्य की गति को आगे बढ़ने से रोकते हैं। यह स्वाभाविक है कि हिन्दू समाज के ही पुत्र होने के कारण, संघ के स्वयंसेवकों में भी हिन्दुओं की भली-बुरी सभी बातें होंगी। किन्तु संघ की यही इच्छा है कि ये दोष नष्ट हो जायं। समाज विघातक बुराइयों का अथवा दोषों का प्रतिबिंब, हम संघ के स्वयंसेवकों में नहीं सह सकते। हम लोगों की यह कोशिश रहेगी कि संघ के स्वयंसेवक सामाजिक दोषों से मुक्त हों तथा, संघ के जीवन के नये गुण संस्कार उनमें पैदा हों। हिन्दुओं का सबसे पहिला सामाजिक दोष है उनकी निष्क्रियता। परन्तु संघ के स्वयंसेवकों को इतना कार्य निरत रहना चाहिये कि संघ में निष्क्रियता का नाम निशान भी दिखाई न दे। हममें कार्य के प्रति उत्कटता, तीव्रता और दृढ़ निश्चय हो तो हमारे सिर पर चढ़े हुए निष्क्रियता के भूत को हम सहज ही मार भगा सकते हैं।

संघ का मन्तव्य यह है कि अपने समाज में समाज-सेवा की बुद्धि से

प्रेरित कार्यकर्ता, विपुल प्रमाण में निर्माण किये जायँ। यदि आप में कार्य करने की सच्ची इच्छा है तो आपको स्वयंस्फूर्ति से कार्य के विषय में विचार करना चाहिए। तभी आप कार्य कर सकेंगे। जितना बताया केवल उतना ही कार्य करने से सच्चा कार्य नहीं हो सकेगा। सच्चे कार्यकर्ता को स्वयं सोचकर अपने कार्य की आयोजना बनानी पड़ती है। यदि आप अपने को संघ का कार्यकर्ता समझते हैं तो पहले आपको यह सोचना होगा कि आप कौन सा कार्य हर दिन और हर महीना करते हैं ? हमेशा अपने किये हुए कार्य की आपको जाँच पड़ताल करते रहना चाहिये। केवल हम संघ के स्वयंसेवक हैं और संघ ने गत चौदह वर्षों में अमुक कार्य किया है, इसी बात में आनन्द तथा अभिमान मनाते हुए आलस्य में दिन काटना निरा पागलपन ही नहीं, अपितु कार्यनाशक भी है। वास्तव में गत चौदह वर्षों के कार्य में गर्व करने योग्य कौन सी बड़ी बात है। यथार्थ में हम इतने समय के अन्दर बहुत ही कम कार्य कर सके हैं। इसका हमें खेद होना चाहिए। कार्य की विशालता को देखते हुए हम अपनी जिम्मेवारी को समझ लें। हमें अल्प संतोषी नहीं होना चाहिए। जितना भी अधिक कार्य हम करें, कम ही होगा। अभी तक कार्य बहुत अधिक न हो सका, इसका कारण यह है कि दोष बहुत अधिक हैं। उन्हें शीघ्रातिशीघ्र दूर करने का यत्न करें। हमारे सिवा हमारे दोषों को दूसरा कौन दूर कर सकेगा ? नागपुर तथा नागपुर जिला हमारे संघ के संगठन का केन्द्र स्थान है। यहाँ से हमें चारों ओर स्फूर्ति की तरंगें फैलानी हैं। यह तभी हो सकता है, जब हम स्वयं अपने केन्द्र की सब से अधिक उन्नति करते हुए साथ ही साथ अन्य प्रांतों की शाखाओं को भी आगे बढ़ाने में भरसक मदद करें। सारे हिन्दू राष्ट्र को हमें अपने साथ-साथ आगे बढ़ाते ले जाना है। यदि केन्द्र स्थान कार्य में सबसे अगुवा न रहा तो वह दूसरों को कैसे आगे बढ़ा सकेगा ? दूसरे कई आन्दोलन आज तक सफल न हो सके, इसका भी कारण यही है कि उनके कार्यकर्ता लोग दूसरों को आगे बढ़ने का उपदेश देते हुए भी स्वयं पिछड़ जाते थे।

संघ के संबंध में इस प्रकार की अनुचित बात कभी न होने दो। अपना दृष्टिकोण विशाल करो और तेजी से आगे बढ़ो।

यह खूब समझ लो कि कष्ट उठाये और स्वार्थ त्याग किये बिना कुछ भी फल मिलना असम्भव है। मैंने 'स्वार्थ त्याग' शब्द का व्यवहार किया है। किंतु हमें जो कार्य करना है, वह हमारी हिंदू जाति के ही स्वार्थ के लिए होने के कारण, उसी में हमारा व्यक्तिगत स्वार्थ भी अंतर्भूत है। फिर दूसरा स्वार्थ हमारे लिए बचा ही कौनसा? और यदि इस प्रकार यह कार्य हमारे स्वार्थ का ही है तो फिर उसके लिए हमें जो भी कष्ट उठाने पड़ेंगे उसे हम स्वार्थ त्याग कैसे कह सकते हैं? वास्तव में यह स्वार्थ त्याग हो ही नहीं सकता। हमें केवल अपने 'स्व' का अर्थ विशाल करना है, अपने स्वार्थ को हिन्दू राष्ट्र के स्वार्थ से हम एकरूप कर दें। हमारा काम बन जावेगा। इसलिए संघ बार-बार कहता है, कि हिन्दू राष्ट्र की सेवा करने में हम किसी प्रकार का त्याग कर रहे हैं, इस वृथा अहंकार की भावना को छोड़ दो। समाज-प्रेम और कर्तव्य से परिपूर्ण जीवन बिताओ। ऐसा करने से समस्त हिन्दू-समाज आप ही आप तुम्हारी ओर आकर्षित हो जायेगा।

हमारा दृढ़ निश्चय है कि जहाँ तक हो सके, जल्द से जल्द हम संघ कार्य को पूरा करेंगे। यह तो सीधी बात है कि हम जितनी अधिक तेजी से काम करेंगे उतना ही कम समय हमें अपने उद्देश्य तक पहुँचने में लगेगा। अतः काम की गति हमें सैकड़ों गुना बढ़ानी चाहिए। लोग भले ही तुम्हारी निन्दा करें किन्तु यदि तुम्हारा मन साफ है तो निन्दा स्तुति की परवाह करने की आवश्यकता नहीं। हामरे संगठन के कारण राष्ट्र पर होने वाले सुपरिणाम को देखकर—निन्दकों के मुख लाज के मारे झुके बिना न रहेंगे। अपने समाज में संगठन पैदा करके उसे बलवान तथा अजेय बनाने के सिवा हमें और कुछ नहीं करना है। इतना कर देने पर सारा काम आप ही आप बन जावेगा। हमें आज सतानेवाली सारी राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक समस्याएँ

आसानी से हल हो जायँगी।

हमारा कार्य अखिल हिन्दू समाज के लिये होने के कारण उसके किसी भी अंग की उपेक्षा करने से काम न चलेगा। सभी हिन्दू भाइयों के साथ, फिर वे किसी भी उच्च या नीच श्रेणी के समझे जाते हों, हमारा बर्ताव हर एक से प्रेम का होना चाहिये। किसी भी हिन्दू भाई को नीच समझकर उसे दुतकारना पाप है। कम से कम संघ के स्वयंसेवकों के मन में तो इस प्रकार की संकुचित कल्पना को स्थान न मिले। हिन्दुस्थान पर प्रेम करने वाले हर एक हिन्दू से हमारा व्यवहार भाई जैसा ही होना चाहिए। लोग कैसा व्यवहार करते हैं और क्या बोलते हैं, इसका कोई महत्व नहीं। हमारा बर्ताव अगर आदर्श हो, तो हमारे सारे हिन्दू भाई हमारी ओर बराबर आकर्षित होंगे। सारा-हिन्दू समाज हमारा कार्य-क्षेत्र है। हम सभी हिन्दुओं को अपनावें। अपने निजी मान-अपमान की क्षुद्र भावनाओं को तज कर हमें प्रेम तथा नम्रता के साथ अपने समाज के भाइयों के पास पहुँचना होगा। कौनसा पत्थर-हृदय हिन्दू है जो तुम्हारे मृदुता तथा नम्रता के शब्दों को सुनने से इन्कार कर देगा।

अन्य लोग इस कार्य को चाहे जितना कठिन बतलायें, किन्तु तुम स्वतः कठिनाइयों का रोना न रोओ। हमें तो वह कार्य कर दिखाना है, जिसका परिणाम देखकर संसार को दाँतों तले अंगुली दबाकर ही रहना पड़ेगा। क्या तुम्हें पता नहीं कि संघ का प्रारम्भ कितने थोड़े से लोगों से हुआ? उन्हीं मुट्ठी भर लोगों ने अपने सतत परिश्रम से संघ को बढ़ाकर ७०,००० से भी अधिक संख्या निर्माण की है। क्या उनके कार्य में कोई कठिनाई ही न थी? अवश्य थी। किन्तु कठिनाई को चुपचाप पार कर वे कार्य को बढ़ाते गए। मुट्ठी भर लोग जब संघ को इतना बढ़ा सके, फिर हम तो आज ७०,००० से भी अधिक संख्या में हैं। हम हजार गुना अधिक कार्य बढ़ा सकते हैं। किन्तु उसके लिए पहिले हम सभी लोगों को संघ से एकरूप हो जाना चाहिये। संघ के किसी

भी कार्यकर्ता में इतनी शक्ति हो कि एक वर्ष की अवधि मिलने पर वह असंख्य स्वयंसेवक तैयार कर सके। जो कार्यकर्ता कार्यकुशल स्वयंसेवक निर्माण नहीं कर सकता, वह देश के लिए कुछ नहीं कर सकेगा। जीवित मनुष्य वही है जिससे अनेक जीव पैदा हो सकते हैं और सच्चा स्वयंसेवक भी वही है जो अनेक कर्तव्यशील स्वयंसेवक निर्माण कर सकता है। हम दावे से ऐसा कह सकें कि हमारे ७०,००० स्वयंसेवक सत्तर हजार शाखाएँ निर्माण कर सकते हैं। क्या हम आज यह दावा कर सकते हैं? यह तभी होगा, जब एक स्वयंसेवक एक शाखा के बराबर होगा।

संघ का निर्माण इसलिए नहीं हुआ कि हम देश की प्रगति में अड़चन या रुकावट डालें। हमें तो सिद्ध करना है कि जनता में संगठन के द्वारा देश में विराट शक्ति निर्माण की जा सकती है। इस बात के लिए हममें से हर एक को विचार करना चाहिए। हर एक को रात दिन यह सोचना चाहिए कि मुझे हमेशा नए-नए मित्र किस तरह मिल सकेंगे और किस प्रकार मैं उन्हें संघ में शामिल कर सकूँगा। इस काम के लिए हमारे जी में तीव्र बेचैनी पैदा हो जानी चाहिए। हमें व्यग्र हो जाना चाहिए और अन्य कोई भी बात हमें अच्छी न लगनी चाहिए। यदि हम इस प्रकार अपने कार्य के पीछे पागल न हो सके, तो अपना संघ 'संगठन' न रहते हुए, देश की अन्य संस्थाओं या 'दलों' जैसा एक मामूली 'दल' होकर रहेगा, जिसका देश को कुछ भी उपयोग न होगा। अपने कार्य की ओर अपने कर्तव्य के अतिरिक्त इस जीवन की अन्य किसी भी बात के प्रति हमें आकर्षित नहीं होना चाहिए। संघ के स्वयंसेवक के लिए, जिसने देश तथा समाज की सेवा का महान व्रत ग्रहण किया है, सुख और संतोष अब कहाँ। उसके लिए उसका कार्य ही सर्वस्व है जिसमें उसे जी-जान से जुट जाना चाहिए। ताकि शीघ्र अपने उद्देश्य की पूर्ति होते हुए हम अपनी आँखों देख सकें। मुझे पूरा विश्वास है कि संघ का प्रत्येक स्वयंसेवक अपना कर्तव्य करेगा।

९. संदेश—

कई दिन बाद मुझे आपके सामने भाषण देने का अवसर मिला है। यों तो संघ के सामने भाषण देने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। वास्तव में हमारे लिए बोलने के लिए बचा ही क्या है। हमें जिस राह पर कार्य करते हुए आगे बढ़ना है वह तो बिलकुल साफ है। हमारे कार्य की रूपरेखा बिलकुल निश्चित है, उसे सम्पन्न करने के लिए हमें अधिकाधिक प्रयत्न मात्र करना है। हम आपस में क्यों बातचीत करते हैं? केवल यों ही बातचीत करने के लिए नहीं, अपितु एक दूसरे के विचार अवगत कर कार्य की गति बढ़ाने के लिये। अपने विचार एक दूसरे को समझाने के लिये जितना बोलना आवश्यक होता है उतना ही हम बोलते हैं।

संघ की आयु अब चौदह वर्ष की हो चुकी है। इस समय के अन्दर हमने जो कुछ भी कार्य किया है उसको हम सब लोग अच्छी तरह से जानते हैं। हमारे सामने जो बड़ी बड़ी बाधाएँ हैं उनका विचार करने पर यह दिखाई देता है कि सम्पन्न किया हुआ हमारा कार्य भी उनके परिणाम में कुछ कम नहीं। संघ ने प्रारम्भ में ही यह बात पहिचान ली थी कि यदि हिन्दुस्थान हिन्दुओं का देश है तो उसके उद्धार की पूरी जिम्मेदारी हम हिन्दुओं के ही सिर पर है। घर हमारा है, अतः उसके प्रति अपनी जिम्मेवारी को मह किसी भी में नहीं टाल सकते। यह आशा व्यर्थ है और अनुचित भी है कि बाहरी लोग, जिन्हें इस देश के विषय में न भक्ति है और न प्रेम, हमारी कुछ मदद करेंगे। फिर जब केवल हमें ही अपना उद्धार करना है तब संगठन के सिवाय हमारे लिए दूसरा चारा ही नहीं रहता। इसी बात को सामने रखते हुए संघ ने हिन्दुओं को संगठित करने का बीड़ा उठाया है। किन्तु अंगीकृत कार्य इतना सरल नहीं था। संघ के जन्मकाल के समय की परिस्थिति बड़ी विचित्र सी थी। 'हिन्दुओं का हिन्दुस्थान' कहना उस समय निरा पागलपन समझा जाता था और हिन्दु संगठन करना देशद्रोह करार दिया गया था।

इस विषम परिस्थिति में भी हमारा कार्य बराबर बढ़ता ही गया। इसका एक मात्र कारण यही है कि अपने कार्यकर्ता निरंतर कार्य करते रहे। लोगों की आलोचना, टीका-टिप्पणी तथा गाली बौछार की हमने तनिक परवाह न की। हमारी अखण्डित प्रयत्नशीलता तथा निष्ठा का ही परिणाम है कि आज 'हिन्दुस्थान हिन्दुओं का' यह घोषणा सर्वत्र गूंज रही है। मैं समझता हूँ कि इसमें हमारी बड़ी भारी जीत है। वास्तव में सिद्धान्तों की विजय सच्ची विजय है फिर लोग हमें भला बुरा कुछ भी क्यों न कहें। अब तो जनता और नेताओं ने संगठन की आवश्यकता को मान लिया है। हम आज देखते हैं कि केवल मुट्ठी भर उत्साही कार्यकर्ताओं के परिश्रम के फलस्वरूप हमारा संगठन सारे भारतवर्ष में फैलता जा रहा है। आज ६०० से ऊपर उसकी शाखाएँ हो गई हैं और ७०,००० से भी अधिक स्वयंसेवक कार्य कर रहे हैं।

पर इतना दौड़ धूप करके अंत में संघ को क्या सिद्ध करना है? इस विषय में केवल यही कहना पर्याप्त होगा कि संघ हिन्दू समाज को बलवान बनाना चाहता है। इस पर आप पूछेंगे कि कितना बलवान? बल की कसौटी कौन सी? मेरे विचार में बल की कसौटी यही हो सकती है कि हमारी शक्ति हमें तथा दूसरों को प्रतीत हो। यों तो शक्ति और दुर्बलता हमेशा सापेक्ष ही रहा करती हैं। हिन्दू-जाति आज दुर्बल है इसका अर्थ यही है कि अपने सिद्धान्तों को मूर्त-स्वरूप देने के लिए जितनी शक्ति हममें होनी चाहिये उतनी आज हममें नहीं है। संघ तो यह जानना चाहता है कि हिन्दुओं को हम उतना शक्तिशाली बना दें कि संसार में किसी को भी हिन्दुओं पर आक्रमण करने का साहस न हो। जब हमारा सामर्थ्य संसार में अजेय होगा तभी ऐसी परिस्थिति निर्माण हो सकेगी।

चौदह साल से हम लोग काम कर रहे हैं। यह अवधि कम नहीं कही जा सकती। हमें यह सोचना चाहिये कि हम अपने उद्देश्य के कितने निकट पहुँचे हैं? यह तो ठीक है कि इन चौदह वर्षों में हमने

अपने कार्य का विस्तार भारतवर्ष के पंजाब, बङ्गाल, बिहार आदि प्रायः सभी दूर दूर के प्रांतों में भी किया है तथा मध्य प्रांत और बम्बई इलाके के हर एक जिले और तहसील में हमारी शाखाएँ सुचारु रूप से कार्य कर रही हैं, किंतु वास्तव में प्रश्न यह है कि हम लोगों ने हिंदुओं में यह विश्वास पैदा कर दिया है कि इस संगठन द्वारा हमारी शक्ति बढ़ रही है ? क्या इस संगठन के द्वारा उन्होंने आत्मशक्ति का कुछ अनुभव किया है ? केवल हमारे जिले और प्रांत का ही उदाहरण लीजिये। क्या हम यहां के लोगों में अपने कार्य द्वारा अपने संगठन के प्रति विश्वास और आदर के भाव अभी तक निर्माण करने में सफल हुए हैं ? हमें यह न भूलना चाहिये कि अभी तक हम न स्वयं और न दूसरों को अपने संगठन की शक्ति का अनुभव करा सके हैं। इस समय तक हमें इतना बढ़ जाना चाहिये था कि लोग दाँतों तले उंगली दबाते। यह ठीक तरह से समझ लो कि संघ न तो व्यायामशाला है न मिलिटरी स्कूल ही है। संघ है हिन्दुओं का राष्ट्रव्यापी अभेद्य संगठन जिसे फौलाद से भी सुदृढ़ होना चाहिये। हाँ, यदि हम किसी क्लब या शैक्षणिक संस्था के रूप में होते तब तो आज की भी प्रगति हमारे लिये गौरवास्पद मालूम होती; किंतु हमारा उद्देश्य इन संस्थाओं की अपेक्षा कितना भिन्न; उच्च और महान् है ! इसलिये मैं बार बार यही दोहराता हूँ कि आप अपने आदर्श को सामने रखते हुए आज की अपनी प्रगति का विचार कीजिये। हमने कितनी प्रगति की है ? हमारी जितनी प्रगति होनी चाहिए थी। उसकी तुलना में आज हम कहाँ हैं ? कितने पिछड़े हुए हैं ? इसका विचार होना चाहिये।

संघ कोई सामाजिक आंदोलन तो है नहीं। यह आंदोलन है समाज के उन लोगों का, जो अपने को बुद्धिमान्, आदर्शवादी तथा जिम्मेदार समझते हैं। तब तो यहाँ का प्रत्येक स्वयंसेवक कार्यकर्ता और नेता होने की योग्यता का होना चाहिए। क्या वस्तु-स्थिति ऐसी ही है ? हम सबको अपनी दृष्टि अंतर्मुख करके, दिल टटोल कर कुछ, आत्म-

निरीक्षण करना चाहिये, ताकि हमें पता लग जाय कि हम कहाँ खड़े हैं।

संघ के कार्यकर्ता, नेता और अधिकारीगण पर्याप्त संख्या में निर्माण हों, इसीलिये हम प्रतिवर्ष अधिकारी-शिक्षा-शिविर चलाया करते हैं। जिनमें भाग लेकर हम सब लोग योग्य कार्यकर्ता तथा अधिकारी बन सकते हैं। किंतु कितने लोग सच्चे दिल से इनका लाभ उठाते हैं? बहुत ही थोड़े। ऐसा क्यों होता है? उसका कारण एक ही है कि हम लोग गम्भीरता पूर्वक विचार नहीं करते; आत्म-निरीक्षण तो करते ही नहीं।

वास्तव में प्रत्येक स्वयंसेवक हमेशा यह सोचता रहे कि वह संघ का दैनिक कार्य कितना करता है और योग्य स्वयंसेवकों की संख्या कितनी बढ़ाता है। सब लोगों के समान हम भी दैनिक कार्य तो करते हैं किंतु संख्या बढ़ाने के विषय में क्या हम कुछ कर रहे हैं! आपको कभी नहीं भूलना चाहिये कि संघ एक जीता जागता संगठन है और उसे आधाररूप से बढ़ते ही रहना चाहिये। तभी हमारे उद्देश्य की पूर्ति हो सकेगी। संगठन की वृद्धि जोरों से और निरंतर होती जाय तभी ध्येय सिद्ध हो सकेगा, अन्यथा नहीं। क्या उस स्वयंसेवक को भी आप सच्चा स्वयंसेवक कहेंगे जो कि साल भर में भी पाँच नये स्वयंसेवक नहीं ला सकता? पर वस्तु-स्थिति क्या है? आप लोगों में से ऐसे कितने लोग मिलेंगे जो प्रति वर्ष पचीस पचास स्वयंसेवकों को संघ में ले आते हों? बहुत ही थोड़े। इसका एक ही कारण है—स्वयंसेवक भरती का काम लगभग बंद सा होगया है। ऐसा क्यों हुआ? क्या आज भी हमारे शहरों में हजारों नवयुवक यों ही सैर सपाटे लगाते हुए नहीं दिखाई देते? हम उन्हें अपने संगठन में क्यों नहीं लाते? मैं मानता हूँ कि बड़ी लगन और उत्साह के साथ काम करने वाले कुछ कार्यकर्ता हममें अवश्य हैं और उन्हीं के भरोसे हमारा कार्य चल भी रहा है किंतु उनकी संख्या कितनी कम है। उनके अतिरिक्त दूसरे लोग, जो आज संघ में हैं, वे

आज क्या कर रहे हैं ? हममें से प्रत्येक को खुले दिल से स्वयं को ही यह प्रश्न पूछना चाहिये, कि मैं कितने लोगों को अपना मित्र बनाता हूँ ? संघ में कितने स्वयंसेवक मैं लाया हूँ ? मुझे भय है कि इन प्रश्नों का उत्तर अत्यन्त निराशाजनक ही मिलेगा। स्वयंसेवक बन्धुओ ! तुमने एक अत्यन्त पवित्र व्रत लिया है ; उसका स्मरण करो। तुमने हिन्दू राष्ट्र को स्वावलम्बी तथा निर्भय बना देने का निश्चय किया है और तुम अपने को सच्चे राष्ट्रवादी मानते हो। किन्तु क्या तुमने इसका भी विचार किया है, कि अपने ध्येय और व्रत की तुलना में तुम्हारी तैयारी किस दर्जे की है ? कैसी ग्लानि की बात है कि एक वर्ष के अन्दर पांच मित्रों को संघ में लाना तुम्हारे लिए कठिन सा मालूम होता है। क्या यही है तुम्हारी योग्यता ? थोड़ी ईमानदारी के साथ सोचो तो सही। स्वयं अपनी आत्मा के साथ वंचना न करो। क्या हम ली हुई प्रतिज्ञा का पालन निःस्वार्थ बुद्धि से तन-मन-धन पूर्वक और ईमानदारी के साथ कर रहे हैं ? अपनी प्रियतम हिन्दू जाति को संसार में अजेय तथा गौरव-शाली बनाने के लिए दिन-प्रतिदिन हम अपने को कितना घुलाते हैं ? कौन सा कार्य करते हैं ; थोड़ा अपना दिल टटोल कर देखो तो—क्या इस महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए मन में कुछ बेचैनी सी भी अनुभव करते हो ? कुछ जी भी तड़पता है ?

और हमारा दावा तो है—इसी पार्थिव शरीर से, इन्हीं आँखों से (याच देही, याच डोला) अपनी कार्यसिद्धि का महोत्सव देखने का। यह कैसे संभव होगा ? संघ यह नहीं चाहता कि किसी क्लब या पाठशाला के समान यह भी सदियों तक जैसे-तैसे चलता ही रहे। संघ की तो यह धधकती हुई आकांक्षा है कि हिन्दुत्व की धू-धू करती हुई ज्वालाएँ देखते-देखते देश के कोने-कोने में फैल जायें।

कई लोग कहते हैं, कार्य बड़ा कठिन है, मार्ग में अनन्त कठिनाइयाँ हैं। मैं कहता हूँ, कठिनाइयाँ भले ही हों, हमें तो पहिले से ही यह पता होना चाहिये कि हमारा मार्ग कंटकाकीर्ण है। किसने ऐसी आशा की थी

कि इस पथ पर गुलाब की पँखुड़ियाँ बिछी होंगी ? राष्ट्र को अपना पूर्व गौरव प्राप्त करा देना थोथी गप्पें नहीं, न वह टके सेर बिकने वाली कोई चीज है। वह तो अत्यन्त अनमोल रत्न है, जिसे खरीदने के लिए उसकी पूरी कीमत देनी पड़ती है। एक पाई भी कम देने से काम नहीं चलता। अपने देश के विगत वैभव को प्राप्त करने के लिए आपके सिवा और कौन सर्वस्व त्याग और अनवरत पुरुषार्थ कर सकेगा ? भारत की भाग्यलक्ष्मी को प्रसन्न करने वाले तुम्हें छोड़ और कौन हो सकते हैं ? यह तो तुम्हें और तुम्हें ही करना होगा। क्या तुम्हारी यह धारणा है कि जिनमें केवल हजार दो हजार स्वयंसेवक हों ऐसी कतिपय शाखाएँ जैसी तैसी चला देने से ही काम चलेगा ? क्या आप दूसरों से आशा रखते हैं, कि वे आकर आपके देश का गौरव बढ़ावेंगे ? तो फिर आप आखिर हैं किसलिए ?

वास्तव में बात यह है, कि हम सब कुछ कर सकते हैं। दस-पांच स्वयंसेवक लाने की तो बात ही क्या, हम पहाड़ को भी चूर्ण कर सकते है। स्वयंसेवक-भरती का काम तो बच्चा भी कर लेगा। प्रश्न केवल एक ही है। हमें आलस्य छोड़ना होगा। वही हमारा वास्तविक शत्रु है। केवल आलस्य के कारण, संघस्थान पर जाने के अतिरिक्त और कोई विशेष काम नहीं कर पाते। आलस्य में समय को बरबाद करना छोड़ यदि हम अपनी सारी शक्तियाँ इस कार्य में लगा दें, तो हमारी प्रगति आश्चर्यजनक हो सकती है। आलस्य तज देने के बाद कार्य प्रारम्भ हो जाता है। प्रारम्भ में इस बात का महत्व नहीं रहता, कि आपको कार्य करने का ढंग मालूम 'है, अथवा नहीं। आप बुद्धिमान हैं। आप सारी बातों को सोच समझकर विचार से काम ले सकते हैं। समाज में जाकर लोगों के साथ किस प्रकार बर्ताव करना चाहिये। यह बात आप भली भांति जानते ही हैं। शालाओं, विद्यालयों, और अन्य स्थानों में कैसे व्यवहार करना, घरवालों तथा पड़ोसियों का दिल अपनी ओर किस प्रकार खींच लेना, मित्रों और संबंधियों पर किस प्रकार अपने गुणों का प्रभाव

डालना, इन सारी बातों से आप खूब परिचित हैं। फिर भी कार्य तेजी से क्यों नहीं बढ़ता ?—बस एक ही कारण है, आपके रोम रोम में व्याप्त आलस्य। इसे नष्ट करो और फिर देखो, तुममें कैसा अभूतपूर्व परिवर्तन हो जाता है।

आओ, हम सब एक साथ मिलकर दुर्दम्य उत्साह के साथ अपने काम में एकदम प्रवृत्त हों। अगर हर एक स्वयंसेवक निरन्तर सचाई के साथ प्रयत्न करे तो वह दस-बीस तो क्या, चाहे जितने नये मित्र बनाकर संघ में ला सकेगा। प्रत्येक को अपने मन में पूरा निश्चय कर लेना चाहिये कि मैं इस वर्ष कम-से-कम दस स्वयंसेवकों को संघ में लाकर ही रहूँगा। मुझे तनिक भी संदेह नहीं है, कि तुम अपना निश्चय अवश्य पूरा कर सकोगे। किन्तु काम इसी क्षण से शुरू कर देना होगा। यदि उस परीक्षार्थी के समान, जो परीक्षा बिल्कुल समीप आ जाने पर दौड़धूप मचाता है, काम करने की चेष्टा करोगे तो आखिर खाली हाथ मलते ही रहना पड़ेगा। आज ही कार्य का प्रारम्भ कर दो और लगातार उसे करते रहो। 'आगे चलकर करेंगे' इस विचार में रहोगे तो धोखा खाओगे। भविष्य पर किसी भी प्रकार निर्भर रहना उचित नहीं। कौन कह सकता है, आगे चल कर परिस्थिति कैसे पलटा खाने वाली है ! पता नहीं आगामी काल में संकट के पहाड़ हमारे सिर पर कब टूट पड़ेंगे ? काम करने का समय हमेशा आज ही का होता है। कल के भरोसे रहने वाला तो धूल में मिल जायगा। इसलिये मैं कहता हूँ, कि कार्य का प्रारम्भ आज ही कर दो। कार्य की निश्चित मर्यादा मन में तय कर लो और उसके अनुसार बराबर काम में लगे रहो। दस बीस या पचीस, जितने भी स्वयंसेवक लाने हों, उनकी 'खोज में अभी से निकलो परन्तु याद रखो, दस ही क्यों न हों, किन्तु वे दस स्वयंसेवक कट्टर; प्रभावशाली और गुणवान होने चाहिये, जो संघ के लिए बहुत ही मूल्यवान सिद्ध हों।

इस कार्य को यदि हम आज न करें तो भविष्य में हमें सफलता

प्राप्त होनी असंभव है। हमने यह तो कभी नहीं कहा था कि दो दिन या दो महीनों में स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे परन्तु साथ ही साथ हम यह भी नहीं चाहते कि हम पीढ़ियों और सदियों तक काम ही करते रहें और उसका फल कुछ भी न हो। हमारी तो कोशिश यह है कि हमारे जीते जी हम अपने उद्देश्य की पूर्ति देख सकें; और यह बिलकुल सयुक्तिक भी है।

हमारा काम किसी से छिपा हुआ नहीं है। अब तो हम जनता के सामने प्रकाश में आ चुके हैं और जनता हमारे कार्य की प्रगति को विशेष ध्यान पूर्वक देख रही है। हमारे चारों ओर शत्रु तथा मित्र फैले हुए हैं। मित्रों को तो हम अपनाएँगे ही। किन्तु जो अपने आपको हमारे शत्रु समझते हैं, उनसे भी द्वेष करने की हमें कोई आवश्यकता नहीं। उन पर हमें दया आनी चाहिए। जब हम लोग लगन के साथ काम करते हुए आगे बढ़ेंगे तब उन्हें हमारे रास्ते से आप ही एक ओर हट जाना पड़ेगा। हमारी शक्ति का प्रचण्ड आवेग वे सह न सकेंगे।

लोग कहते हैं कि आज का समय भीषण और संकटमय है। किन्तु मैं कहूँगा कि आज जैसी सर्वथा अनुकूल परिस्थिति इसके पहिले कभी नहीं आई थी। बस यही समय है हम लोगों के लिए जी जान से प्रयत्न करने का। इससे बढ़कर अनुकूल समय इसके पूर्व कभी न था, और भविष्य में भी ऐसा समय कभी प्राप्त होगा या नहीं, इसमें शंका ही है। जो कुछ काम सचमुच करना हो, वह इस समय सारी शक्ति की बाजी लगाकर कर लो। क्योंकि शायद आगे चलकर कुछ भी करना संभव न होगा। सारा संसार आज तूफानी गति से आगे बढ़ा जा रहा है। हम ही पिछड़ जायेंगे तो कैसे चलेगा? ऐसा भय मत मानो कि समय कठिन आ गया है। कदम पीछे न रखो। बराबर आगे ही बढ़ते जाओ। प्रतिकूल परिस्थिति को परास्त करके जो काम करता है, वही अंत में बाजी मारता है और दुनिया में उसी का नाम होता है। आप लोगों के लिए डरने की बात ही क्या है? भगवान का वरद हाथ हमारे सिर पर

है, क्योंकि हमारा कार्य सच्चा ईश्वरीय कार्य है। भगवान के और संतों के शुभाशीष हमारे साथ हैं। हम चौदह वर्षों से निरन्तर सफलता प्राप्त करते आये हैं। हमारा कदम कभी पीछे पड़ा ही नहीं। फिर भला आज की अनुकूल परिस्थिति में ही हमारा कदम पीछे कैसे रहेगा? हमें तो दूने उत्साह से आगे ही बढ़ना चाहिये और इस भांति हम बराबर बढ़ेंगे। हमारी अन्तिम विजय के सम्बन्ध में मैं बिल्कुल निःशंक हूँ। हमारा कार्य इसके आगे विलक्षण तेजी के साथ उमड़ते हुए, बढ़े बिना न रहेगा।

कुछ पत्र

नागपुर,
ता० २. ७. ३३

परम मित्र श्री............

सप्रेम नमस्ते।.........आपका पत्र पढ़कर और.........संघ की उत्तरोत्तर वृद्धि को सुन कर हमें अत्यन्त आनन्द हो रहा है। आपका वह आश्वासन पढ़कर कि............की संघ-शाखा एक आदर्श संघ-शाखा हो जायगी, हमें बहुत ही समाधान मालूम हुआ। हमें पूर्ण विश्वास है कि लगन पूर्वक प्रयत्न करते रहने पर भगवान आपको मनोनीत कार्य में अवश्यमेव सफलता प्रदान करेंगे।

आपने.........में संघ की दूसरी उपशाखा चालू की यह तो बहुत उत्तम हुआ। आवश्यकता प्रतीत हो तो और भी एक दो शाखाएँ.........में खोल सकते हैं किन्तु सभी उपशाखाओं के योग्य नियन्त्रण करने का ध्यान रखा जाय। हर उपशाखा के कार्य के लिए अलग अलग कुशल, उत्साही और निपुण कार्यवाह की नियुक्ति कर दीजिये और आप स्वयं सब संघ शाखाओं के कार्य पर देख-रेख रखिये। सारी उपशाखाओं का कार्य एक ही रीति से चलना चाहिए। इस ओर अवश्य ध्यान दीजिये कि सारे स्वयंसेवकों की विचार धारा एक सी हो जाय।

पत्रोत्तर अवश्य दें। प्रेम की वृद्धि होती जाय यही अभिलाषा।

नागपुर,
ता० ६. ७. ३१

परम मित्र श्री..........

प्रेम पूर्वक अनेक आशीर्वाद। आपका ता० ४. ७. ३१ का पत्र मुझे कल मिला। मैंने उसे आद्योपान्त पढ़ा है। सदा यह वाक्य याद रखिये, "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।" हम तो केवल कार्य करने के अधिकारी हैं। कार्यों का परिणाम या फल हमारे हाथ की बात नहीं। इसीलिए मनुष्य की परख उसकी सफलताओं या विफलताओं से नहीं की जाती, बल्कि उसके हेतु अर्थात् हृदय की भावनाओं को देखकर की जाती है। इस दृष्टि से देखा जाय तो मैं आपके संघ-प्रेम और हृदय की लगन को अच्छी तरह जानता हूँ। फिर आपके दिल में यह भाव ही कैसे उठ सका कि आपके विषय में किसी तरह की शंका मन में लाऊँगा?

इस वर्ष आप वकील बनेंगे। फिर आपको कहीं न कहीं स्वतन्त्र रूप से संघ-कार्य करना होगा। इसलिये आपको संघ-कार्य-प्रणाली की पूरी जानकारी होनी चाहिये, पूरा अनुभव होना चाहिए। मुझे यह पढ़कर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि आपने इसलिए नियमित रूप से संघ में जाने का निश्चय किया है। अब मैं तो आपसे केवल यही कहना चाहता हूँ कि—

(१) भविष्य में दिल में किसी तरह का संदेह न रखते हुए आप नियमित रूप से शाखा में जाया करें।

(२) संघ-कार्य के प्रत्येक विभाग का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर उनमें निपुणता प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

(३) बिना किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों की सहायता के स्वतंत्र रीति से एक दो संघ-शाखाएँ चला सकने की सिद्धता करें।

और भी कई बातें लिखी जा सकती हैं पर उन्हें आप प्रत्यक्ष संपर्क और अनुभव से जान ही लेंगे। अस्तु पत्र लंबा हो चला है अतः यही रुकता हूँ।

॥ श्री ॥ नागपुर नगर,
ता० १२. ८. ३३

परम मित्र श्री..........की सेवा में

प्रेम पूर्व नमस्कार !..........शाखा की मासिक रिपोर्ट प्रायः समय पर नहीं पहुँचती। इसलिये आपकी शाखा का सिलसिलेवार हाल कभी भी मालूम नहीं होता। और परिणाम स्वरूप व्यवहार में अड़चन सी पैदा हो जाती है। इसलिये भविष्य में हर माह का मासिक वृत उस महीने के अंत में नियमित रूप से हमें भेजते रहिये। चाहे संघ की प्रगति हो या न हो, इस विवरण के भेजने में असावधानी न रहे।........जो इमारत कच्ची नींव पर खड़ी की जाती है, वह प्रारंभ में चाहे सुन्दर और सुघड़ प्रतीत हो, परन्तु बवंडर के एक ही झकोरे से भूमिसात् हुए बिना न रहेगी। इसलिये जितनी प्रचण्ड और भव्य इमारत खड़ी करनी है उतनी ही विस्तृत ठोस और सुदृढ़ नींव भी होनी चाहिए। आज हमारे संघ में लगभग १२५ शाखाएँ और १२००० स्वयंसेवक हैं।

सारांश यह कि मैंने अपनी सारी शक्तियाँ लगाकर संघकार्य की इमारत खड़ी करने का प्रयत्न किया है। परन्तु यह कार्य समूचे राष्ट्र का होने के कारण किसी अकेले व्यक्ति के द्वारा लाख प्रयत्न किये जाने पर भी सफल होना संभव नहीं। मेरा आपसे हार्दिक अनुरोध है कि बिना आपके सहयोग के यह कार्य इसके आगे मुझ अकेले के हाथों होना संभव नहीं।

मेरी स्पष्ट धारणा हो गई . इस वर्ष.....जिला उपरोक्त रीति से संगठित किये बिना मेरा जीवन संघ-दृष्टि से व्यर्थ है। और.....जिला संगठित करने का अर्थ यह है कि इस जिले की हर तहसील में इस वर्ष कम से कम दस शाखाएँ स्थापित हो ही जानी चाहिये। मेरे ख्याल से.....जैसी तहसील में दश शाखाएँ जाना क[illegible] बात नहीं। इससे मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि काम करने में किसी प्रकार

की कठिनाई आवेगी ही नहीं। पर मैं यह नहीं मान सकता कि यदि मनुष्य निश्चयपूर्वक आगे बढ़े तो कठिनाइयों को परास्त करते हुए कार्य न कर सके। अतः मेरा जोर देकर यही कहना है कि आप सभी कठिनाइयों से टक्कर लेते हुए और निजी कामों को कुछ समय के लिये एक ओर रखकर इस वर्ष सुदृढ़ नींव वाली दस शाखाएँ...... तहसील में अवश्य स्थापित कर ही देवें।

नागपुर,

ता० १७-८-३२

परम मित्र श्री......और श्री...

सप्रेम नमस्ते।

आपका ता० ७-८-३२ का मासिक वृत मिला और यह पढ़कर अत्यन्त हर्ष हुआ कि आपकी संघ-शाखा का कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। दशहरे का उत्सव समीप आ रहा है और सब लोगों की आँखें संघ के इस उत्सव की ओर लगेंगी। अतः शाखा के सब स्वयंसेवकों को गणवेश तैय्यार करने की सूचना दे दीजिये और थोड़ी बहुत ड्रिल भी उन्हें सिखाने का प्रयत्न कीजिये। स्वयंसेवकों की नियमित उपस्थिति की ओर अभी से ध्यान देना ठीक रहेगा और नये स्वयंसेवक भर्ती करने का कार्य भी धीरे-धीरे चालू रहे। आप दोनों की संघ-शाखा में प्रतिदिन नियमित उपस्थिति होनी ही चाहिये। इससे अन्य सभी लोगों पर योग्य प्रभाव पड़ेगा और संघ के प्रत्येक स्वयंसेवक के स्वभाव से आप परिचित हो जावेंगे और हर व्यक्ति का उसकी योग्यता अनुसार उपयोग करने की योजना भी बना सकेंगे।

आप लोगों ने उत्साह पूर्वक जिम्मेदारी संभाल कर कार्य चलाया तभी इतने थोड़े समय में आपके यहाँ संघ-कार्य को इतना सुघड़ स्वरूप प्राप्त हुआ है इस बारे में आपकी प्रशंसा किये बिना मैं नहीं रह सकता। भविष्य में भी विघ्न-बाधाओं की परवाह न करते हुए इसी प्रकार उत्साह से कार्य जारी रखिये। मेरा पूर्ण विश्वास है कि ईश्वर की कृपा से आपको

कार्य में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त होगी। अधिक क्या लिखें ?
प्रेम की उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहे।

॥ श्री ॥

नागपुर,

परम पू० डा०......की सेवा में ता० १५-८-३३

सप्रेम दंडवत प्रणाम। मैं आपको बार-बार संघ-संबंधी पत्र लिखता हूँ। अतः शायद कभी-कभी ऊब कर आप मुझ पर झुँझलाते ही होंगे। परंतु डाक्टर साहेब, मैं आपके सिवा और किसे अपनेपन के दावे से पत्र लिख सकता हूँ ? संघ का जो बीज.....भाग में बोया गया उसके फल-स्वरूप इधर छोटी मोटी शाखाओं के पौधे इस ओर लहलहाने लगे हैं। फिर क्या कारण है डाक्टर साहेब कि...... जिले में बोये हुये बीजों में अभी अंकुर तक नहीं फूटे ?......जिले में..............और......इन चार स्थानों पर संघ-शाखाओं की स्थापना हुई पर अभी तक इनमें से किसी भी स्थान पर स्थायी-संघ-कार्य का छोटा सा पौधा भी दिखाई नहीं पड़ता। इसीलिये डाक्टर साहेब, आपको बार-बार कष्ट दिये बिना जी नहीं मानता।

नागपुर में आज तक चौदह शाखाएँ चलती थीं। आज ही पंद्रहवीं शाखा मिडकल स्कूल के विद्यार्थियों के लिये खोली गई है। नागपुर की औसत उपस्थिति १००० के ऊपर है और यहाँ का संघ-कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। परन्तु जितनी तेजी से कार्य की प्रगति हो रही है उतनी ही तेजी से हमारे मार्ग में बाधाएँ भी उत्पन्न हो रही हैं। और स्वजातीय और विजातीय लोगों के द्वारा हमारे मार्ग में कठिनाइयों के दुर्लंघ्य पर्वत खड़े किये जा रहे हैं पर इन कठिनाइयों को चूर्ण-विचूर्ण कर हमें अपने मार्ग पर अग्रसर होते जाना है। ऐसी हालत में डाक्टर साहेब, हम आपके सिवाय और किससे सहायता की याचना करें। जिनके हित-संबंध हमसे विपरीत हैं, वे यदि इस संगठन को अच्छी निगाह से नहीं देखते तब तो हमें अपना संगठन बढ़ाना ही चाहिये, और बहुत जल्दी बढ़ाना

चाहिये। कम से कम अपना प्रांत (मध्यप्रांत और बरार) तो इस दृष्टिकोण से शीघ्रातिशीघ्र संगठित कर लेना चाहिये। डाक्टर साहेब, आपकी इच्छा और आज्ञा ही तो आप जब कहें तब इस कार्य के लिये फिर से...... आने को मैं आवश्यकतानुसार तैयार हूँ।

नागपुर,

परम मित्र.......प्रेम पूर्वक आशीर्वाद। ता० १६-१२-३३

आपका ता० ७-१२-३३ का पत्र, अक्टोबर और नवम्बर महीनों की मासिक रिपोर्ट और उसी लिफाफे में भेजा हुआ २५) रु० का चेक कुछ दिन पहिले मिला और आपका ता० १८-१२-३३ का पत्र आज प्राप्त हुआ। इसमें संदेह नहीं कि श्री.....के वहाँ से चले जाने के कारण आपकी शाखा का एक कार्य करने वाला स्वयंसेवक कम हो गया है। परन्तु मेरा विश्वास है कि आपमें से ही अन्य किसी स्वयंसेवक ने आगे बढ़कर उनके खाली स्थान की पूर्ति की ही होगी। यह आवश्यक है कि यदि अपनी शाखा में किसी भी कारण से किसी कार्यकर्ता का अभाव हो जावे तो जिम्मेदारी संभालने के लिये अनेक लोग "मैं तैयार हूँ, मैं तैयार हूँ" इस लगन से सामने आ जाने चाहिये। और हर कार्यकर्त्ता की यह जिम्मेदारी है कि शाखा का वातावरण ऐसा बनायें कि मौका आने पर इस तरह जवाबदारी संभालने की सबकी तत्परता दीख पड़े।

......और.....शाखाओं के स्वयंसेवकों से मिलने की मेरी भी उत्कट इच्छा है। मैं भूला नहीं हूँ कि जब भाई परमानन्द जी...गये थे तब आपमें से जो स्वयंसेवक वहाँ आये थे उन्हें मुझसे मिले बिना ही लौटना पड़ा था। मैं आपको यह आश्वासन देता हूँ कि यथा शीघ्र मैं आप लोगों से भेंट करने का प्रयत्न करूँगा। हाँ आपको.....और...... शाखाओं के कार्य की ओर पूर्ण ध्यान देना चाहिये। सदा आपके हृदय में यह लगन हो कि इन शाखाओं की उत्तरोत्तर वृद्धि किस प्रकार होगी। इसी ख्याल से प्रेरित होकर आप स्वयं उत्साह के साथ कार्य करते रहें और अन्य साथियों को भी कार्य में जुटा दें।

...और......तथा अन्य सभी संघ-बंधुओं से मेरा नमस्कार कहियेगा। पत्रोत्तर अवश्य दें यही अभ्यर्थना।

नागपुर
ता. १९-१-३४

परम मित्र श्री.........

सप्रेम अनेक आशीर्वाद।..........के समान दूर जगह कार्य करना बड़ा कठिन है। इसका अनुभव तुम्हें होता होगा। फिर भी मुझे विशेष चिन्ता नहीं होती क्योंकि तुम्हारी कुशलता पर मुझे पूर्ण विश्वास है। एक बात की सावधानी रखना। किसी स्थान पर संघ-कार्य किंचित कम हो तो भी हर्ज नहीं। पर वातावरण बिगड़ने न पावे और वहाँ संघ का कोई शत्रु उत्पन्न न हो।......किन्तु अन्य स्थानों पर जितनी जल्दी बन सके उतनी जल्दी शाखाओं की स्थापना करना आवश्यक है। ऐसा सोचकर बाट देखने में कोई लाभ नहीं कि एक जगह की शाखा उत्तम रीति से चल जाने पर ही दूसरी शाखा खोली जायगी। ऐसा करना कार्य की दृष्टि से योग्य भी नहीं है। आजकल अनेक कामों के जमघट में मैं इतना व्यस्त हूँ कि पत्र लिखने की इच्छा होते हुए भी समय नहीं मिलता। इसलिये यहाँ से पत्र आने में विलम्ब हो जाय तो बुरा न मानना।

पत्रोत्तर देना—

नागपुर शहर,
ता० १-१०-३४

परम मित्र.........

सप्रेम नमस्ते। कुछ समय पहिले ता० २१-८-३४ को मैंने आपको पत्र लिखा था परन्तु उसका उत्तर नहीं आया। अस्तु, श्री......गत वर्षानुसार इस बार भी संघ के लिये दौरे पर निकले हैं और इसी सिलसिले में आपके यहाँ भी आयेंगे। अतः कार्य के महत्व को ख्याल में रखकर कृपया आप उन्हें हर तरह की सहायता करें यही आप से हार्दिक अनुरोध है। हमने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कार्य किसी एक शहर या प्रांत के लिए जारी नहीं किया है। हमारा उद्देश्य तो यह है कि

यथाशक्य जल्दी सारे हिन्दुस्थान को संगठित कर हिंदू समाज को स्वसंरक्षणक्षम और सामर्थ्यशाली बनायें। हमारी राय में आज हिन्दू समाज के लिये जीवन-मरण का प्रसंग है। यदि समाज असंगठित और अस्त-व्यस्त ही रहा तो भविष्य में इसका अस्तित्व तक मिट जायगा और हिन्दू संस्कृति का तो नाम निशान भी न रहेगा। इसलिए स्वयं जीवित रहने की इच्छा से ही इस कार्य में हम दत्तचित हैं। इक्के दुक्के गांव में १०-५ बच्चों के एकत्रित होकर खेलने से यह काम नहीं हो सकता। कृतः आप जैसे समाज-धुरीणों को स्वयं कार्यक्षेत्र में आकर इस कार्य में जोश भर देना चाहिये। अपने पूर्व परिचय के कारण आशापूर्वक यह पत्र लिखा है। श्री······आपसे इस विषय में भेंट के समय अधिक खुलासे रब बातचीत करेंगे। सब बातों का योग्य विचार कर कृपया अपने उचित परामर्श से हमें उपकृत कीजिएगा।

प्रेम वृद्धिगत होता रहे, यही अभ्यर्थना—

नागपुर शहर,

रा० १६-१२-१९३४

परम मित्र ·······

प्रेम पूर्वक अनेकाशीर्वाद। आपका ता० ६-१२-३४ का पत्र मिला और कई दिन पूर्व ता० २४-१०-३४ को श्री······के नाम पर भेजा हुआ पत्र पहिले ही मिल चुका है। आपके पत्र में प्रदर्शित विचार धारा को पढ़ कर अत्यन्त समाधीन हुआ। जिन शाखाओं में आपके समान शांति से विचार करने वाले थोड़े से भी स्वयंसेवक हों, वे शाखायें कार्यक्षम बन कर अवश्य चिरस्थायी होंगी।······शाखा का भविष्य आपके समान कार्य-कर्ताओं पर अवलम्बित है और मेरा मन यही गवाही देता है कि वह उज्वल ही होगा। संघ-कार्य करते समय कार्यकर्ता को अपने से बड़ों, अपनी बराबरी वालों और अपने हाथ के नीचे कार्य करने वाले सभी कार्य-कर्ताओं की वृत्तियों को परखकर उन वृत्तियों के अनुरूप उदार नीति का उपयोग करना पड़ता है। मेरा विश्वास है कि आप इस

नीति को निबाहने का प्रयत्न करते होंगे।

प्रेम वृद्धिगत होता रहे, यही अभ्यर्थना—

आपका—

नागपुर,

ता० १६-१-३५

परम मित्र श्री………

सप्रेम अनेकाशीर्वाद। तुम्हारे ता० ८, १२ और १६ के पत्र प्राप्त हुए। सारे पत्र पढ़ कर आनन्द हुआ। सचमुच……। न तो तुम्हारी प्रशंसा के लिए हमारे कोष में योग्य शब्द हैं, न तुम्हें अपनी प्रशंसा भली मालूम होती है। इसीलिए कोरे शब्दों से मैं तुम्हारी स्तुति नहीं करता। फिर भी तुम किस तरह कठिनाइयों में से कुशलता पूर्वक राह निकाल लेते हो यह देख तुम्हारा अभिनन्दन किये बिना हमसे रहा नहीं जाता। तुम्हारे सदृश स्वयंसेवक यदि काफी संख्या में संघ को प्राप्त हों तो देखते-देखते संघ की अभिवृद्धि हो जायगी। इस अवसर पर मैं तुम्हें यही कहना चाहता हूँ कि बड़े लोग सहृदयता पूर्वक जितनी भी सहायता करदें उसी में संतोष मानकर, आगे के कार्य की सारी जिम्मेवारियाँ हमें ही उठा लेनी चाहिये। और उन बड़े लोगों की सहायता के लिये अपने हृदय में सदा उनके प्रति कृतज्ञ बुद्धि रखनी चाहिये। संघ की कार्य-प्रणाली नूतन होने के कारण पुराने लोगों के हृदयों में कार्य की लगन हमारे जैसी ही तीव्र हो, यह सम्भव नहीं। हम लोगों को यह लगन धीरे-धीरे और प्रयत्न पूर्वक उनमें उत्पन्न करनी चाहिये।……

भवदीय—

नागपुर,

ता० २-४-३५

परम मित्र श्री………

सप्रेम नमस्कार। आपका ता० २४-३-३५ का पत्र पहुँचा और आफिसर्स ट्रेनिंग कैंप में आने वाले स्वयंसेवकों के नाम प्राप्त हुए।

आपके पत्र से ज्ञात हुआ कि······इन तीन शाखाओं से ट्रेनिंग कँप के लिये स्वयंसेवक आयेंगे। परन्तु···जिले की अन्य शाखाओं से कितने लोग आने वाले हैं, इसकी खबर हमें अभी तक नहीं मिली। अतः इस कार्य के लिये सारे जिले में दौरा करके हरएक शाखा से ट्रेनिंग कँप के लिए स्वयंसेवक लाना अत्यन्त आवश्यक है। जहाँ शाखा न हो वहाँ के भी एक दो निर्भीक, हिन्दूवृत्ति के और आपके पूर्ण विश्वासपात्र सज्जन संघ के स्वयंसेवक बनकर, नागपुर में इस ट्रेनिंग कँप के लिए आने को उद्यत हों और यहाँ से लौटने पर अपने गाँव में संघ-शाखा खोलने के लिए तैयार हों, तो ऐसे सज्जनों को भी इस ट्रेनिंग कँप में अवश्य भेजियेगा। इस ट्रेनिंग कँप से शिक्षा-प्राप्त जितने अधिक स्वयंसेवक आपके जिले में होंगे, उतने ही अधिक जोरों से आपके जिले में आप संघ-कार्य बढ़ा सकेंगे। इस बात को ध्यान में रखते हुए अधिकाधिक स्वयंसेवक भेजने का प्रय करियेगा।

भवदीय—

सांगली,

सर्व स्वयंसेवक-बन्धुओ, ता० २-५-३५

सप्रेम अनेक आशीर्वाद। कल से आफीसर्स ट्रेनिंग कँप शुरू हो गया होगा। मैं इस समय आप लोगों से बहुत दूर सांगली राज्य में हूँ, और आपके साथ रहने के लिए कुछ दिन तक और न आ सकूँगा, इस कल्पना मात्र से मन व्यथित सा है। यद्यपि मेरा पार्थिव शरीर आप लोगों के बीच में नहीं है, फिर भी अपनी कल्पना की आँखों से, मैं आपके सभी कार्य-कलापों को भली भांति देखता हूँ और मेरा मन आपके द्वारा किये जाने वाले कार्यक्रमों के मानसिक चित्र तैयार करने में तल्लीन रहता है। आपके इन मनोरम्य चित्रों को यदि मैं क्षणभर के लिए भूलना भी चाहूँ तो वैसा न कर सकूंगा। वहाँ के दृश्य निरन्तर आँखों के सामने नाचते रहते हैं।

चाहे इतनी दूर से क्यों न हों, परन्तु आप से जी खोलकर कुछ

अपने विचार प्रकट करने के हेतु से मैं यह पत्र लिख रहा हूँ। हम सभी ने राष्ट्र-कार्य की बहुत बड़ी जिम्मेदारी अपने सिरों पर धारण की है। हमारा यह बाना है कि संघ के उच्च ध्येय को व्यवहारिक जीवन में, सत्य सिद्ध कर दिखायेंगे। हमें अपने समाज के लोगों के हृदय में यह बात जमा देनी है कि तत्व इसलिये है कि उनके अनुसार आचरण हो। हमें अपने स्वयं के उदाहरण से जनता को यह बतला देना है कि संघ के द्वारा प्रचलित कार्यपद्धति ही हमें अपने ध्येय तक पहुँचा सकेगी। संघ के स्वयंसेवकों के हृदयों में जो भाव हैं वे प्रत्यक्ष उनके आचरण में भी आने चाहिए। हर-एक स्वयंसेवक के आचरण में तत्व और व्यवहार का मनोरम सामंजस्य होना चाहिए। जो एक बार इन बातों को जान लेगा उसके व्यवहार में फिर कभी भी किसी प्रकार की त्रुटि न रह सकेगी।

अनुशासन अपने संगठन की नींव है। इसी नींव पर हमें इस विशाल इमारत को खड़ा करना है। किसी की भूल से क्यों न हो, यदि कहीं नींव जरा भी कच्ची रही तो इमारत का उस ओर का भाग खिसक जायगा, इमारत में दरार पड़ जायगी और फलतः सारी इमारत ही ढह जायगी। आप सब लोग इस बात को जानते ही हैं। आप लोगों ने इस समय ट्रेनिंग कैंप में भाग लिया है। यह कैंप ४० दिन तक रहेगा। कैंप में भाग लेने वाले हरएक कार्यकर्ता पर चाहे वह सीखने के लिये आया हुआ स्वयंसेवक हो, या अधिकारी—इस कैंप को सफल करने की जिम्मेदारी है। हर एक स्वयंसेवक का यह सर्व प्रथम कर्तव्य है कि स्वयं कैंप के नियमों का पालन करे और दूसरों से भी पालन करवाये। आज्ञा पालन का स्थान अनुशासन में अत्यन्त महत्व का है। हरएक स्वयंसेवक को अपने अधिकारी की और अधिकारी को अपने से बड़े अधिकारी की आज्ञा का पालन करना चाहिए। उसी प्रकार यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि छोटे से बड़े तक सभी लोग परस्पर एक दूसरे को प्रेम और आदर की दृष्टि से देखें।

हरएक स्वयंसेवक को इस बात के लिए सचेष्ट रहना चाहिए कि उसके हाथों कँप का कोई नियम भंग न हो और अधिकारियों को विवश होकर उसे दण्डित न करना पड़े। अधिकारियों द्वारा बतलाये गये नियमों और व्यवहार के तरीकों के अनुसार ही सब स्वयंसेवकों को अपना आचरण रखना चाहिए। यदि कभी किसी प्रकार की गलतफहमी के कारण, आप निरपराध होते हुए भी अधिकारी आपको सजा दे बैठे तो आपको चाहिए कि चुपचाप और आदरयुक्त भाव से सहन करलें और बाद में अनुकूल प्रसंग देखकर अपनी निर्दोषिता नम्रतापूर्वक उसी अधिकारी की आंखों में सिद्ध करदें।

अन्त में इस विश्वास के साथ यह पत्र समाप्त करता हूँ कि आप सारे परस्पर अंतःकरण पूर्वक सहयोग देते हुए अपने कार्य में यश संपादन करेंगे —

भवदीय—

नागपुर,

ता० ८-१०-३६

परम मित्र..........

प्रेम पूर्वक अनेक आशीर्वाद। तुम्हारा ता० ५-१०-३६ का पत्र कल ही मिला। तुम तो विकट से विकट परिस्थिति में भी निराश न होते हुए काम करने में कुशल हो। तुम जानते ही होगे कि इसीलिये तुम्हारी ....जिले में नियुक्ति की गई है। इस जिले में वही कार्य कर सकता है, जो स्थित-प्रज्ञ हो और जिसका हृदय "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" इस तत्व से भलीभांति रंगा गया हो। क्या तुम्हारे हृदय की तैयारी उपर्युक्त तत्व के अनुसार कार्य करने की है? किसी भी परिस्थिति में निराश न होने का तुमने दृढ़ निश्चय कर लिया है न? ऐसा हो तभी तुम.........जिले में काम करने की महत्वाकांक्षा रखो। अन्यथा सारे लोगों को नमस्कार कर तुम श्री.........के साथ दशहरे के उत्सव के प्रसंग पर, पुनः कभी न लौटने के निश्चय से यहाँ

चले आओ। चतुरों को इससे अधिक क्या लिखा जाय।

भवदीय—

नागपुर,

ता० ११-१२-३६

परम मित्र श्री.........और श्री.........

प्रेमपूर्वक अनेक आशीर्वाद।.........की स्थानिक परिस्थिति के विषय में विशेष आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं। सभी जगह प्रारंभ में यही हाल रहता है। नागपुर में भी संघ से बाहर जो लोग हैं, वे अभी तक यह कहाँ समझ पाये हैं कि संगठन संगठन के ही लिये हुआ करता है? फिर.........के लोग इतने शीघ्र इस बात को कैसे जान पावें? कार्य के प्रत्यक्ष अनुभव के बिना और अपनी आँखों संगठन का दृश्य देखे बिना किसी के दिल में यह तत्व जंच नहीं सकता। अतः इस बारे में चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं। यदि हमें.........में अपने तत्व को अच्छी तरह समझ सकने वाले एक दो प्रमुख व्यक्ति प्राप्त हो गए तो अपना कार्य निभ जायगा। किन्तु ऐसे एक दो व्यक्तियों को संघ की ओर आकृष्ट करने का कार्य तुम्हें अवश्य ही करना चाहिये। अन्य बड़े बड़े नेताओं को संघ-कार्य समझ में न आवे तो कोई चिंता नहीं।.........जैसे स्थान पर एक शाखा ही स्थापित कर उसे उत्तम प्रकार से चला दिखाना आवश्यक है। अधिक से अधिक यह किया जा सकता है कि एक शाखा नई बस्ती में और एक पुरानी बस्ती में, इस प्रकार दो शाखाएँ शुरू की जाँय। आरम्भ में इससे अधिक शाखाएँ खोलना आप लोगों के लिये हितकारक न होगा। जो स्थान सबसे अधिक महत्वपूर्ण हो और जहाँ.........के प्रमुख लोग सुविधा पूर्वक इकट्ठे हो सकते हों, ऐसे स्थल पर यह शाखा होनी चाहिये। सारा उत्साह और शक्ति इस एक ही शाखा में जुटा देनी चाहिये। सारे उत्साही तरुणों को बाध्य किया जाय कि वे इसी शाखा में आया करें। यदि तुम भिन्न भिन्न स्थानों पर शाखाएँ खोल दोगे तो तुम्हारा उत्साह बंट

जायगा और वहाँ के लोगों की शक्ति भी एक ही स्थान पर केन्द्रीभूत न होने के कारण आवश्यक मात्रा में संगठन और संगठन का दृश्यस्वरूप तैयार न हो सकेगा। परन्तु यदि एक शाखा सुचारु रूप से और आदर्श रीति से चलाई जा सकी तो आगे चलकर उसी शाखा में अनेक शाखाओं का निर्माण हो सकता है।

पू० आबाजी का आप लोगों को आशीर्वाद।

नागपुर,

ता० १८ २-१९३७

परम मित्र श्री........

प्रेम पूर्वक नमस्कार।........मेरी सारी यात्रा में श्री........मेरे साथ थे और.....के दौरे में श्री.....और उनके सेक्रेटरी श्री......भी साथ ही थे। इसके अलावा कई प्रकार के अनेक लोग बीच बीच में हमसे मिलते थे और लौट जाते थे। इसमें तो शक नहीं कि दौरा था तूफानी। प्रतिदिन दोपहर दो बजे भोजन और रात के दो बजे तक जागरण, इस क्रम का कभी भंग न हुआ। फिर भी यही कहना होगा कि सारा दौरा हुआ अत्यन्त उत्साह वर्धक। हरएक शाखा में और विशेषतः तरुण लोगों में संघ-कार्य के प्रति अत्यंत निष्ठा और लगन दिखाई पड़ती थी और सभी जगह एक प्रकार का नव चैतन्य फैला हुआ था। इस दौरे के कारण यह बात सभी के ख्याल में आ गई कि संघ कार्य की वृद्धि के ऐसे दौरों की नितान्त आवश्यकता है। सभी संघ-बंधुओं से नमस्कार।

नागपुर,

ता० ८-११-१९३७

परम मित्र श्री........

प्रेम पूर्वक अनेकाशीर्वाद। आपका ता० २६-१०-३७ का मेरे नाम का पत्र, ता० ९-११-३७ का श्री........के नाम का पत्र, दोनों प्राप्त हुए और पढ़ कर अत्यन्त आनन्द हुआ। उस ओर धैर्य और लगन के साथ काम करके आपने काफी सफलता प्राप्त की है। इसे देख कर किसे

समाधान न होगा ? मेरा विश्वास है कि इसी लगन से, किन्तु लोगों के साथ अत्यन्त मिठास और नम्रता से व्यवहार रखते हुए, काम करते जाओगे तो आपका भविष्य अत्यन्त उज्वल होगा। अभी आपको लगभग दो वर्ष उधर ही बिताने हैं। अपने कार्य की जाँच अपनी विवेक बुद्धि से करते रहो। जो मार्ग विवेक बुद्धि को उचित जान पड़े वही ठीक मार्ग है। अपने मन से बढ़ कर परामर्शदाता और उपदेशक आपके पास अहर्निश और कोई नहीं हो सकता। अतः अपने जीवन की हरएक बात अपने शुद्ध और सात्विक मन के सामने रखो। अपने मन को ही अपना मार्ग प्रदर्शक बनाओ। तभी हम अपने जीवन काल में निश्चय पूर्वक यश प्राप्त कर सकते हैं।

नागपुर,

ता० १०-११-१९३७

परम मित्र श्री·········

सप्रेम नमस्कार।

आपकी·········नामक साप्ताहिक समाचार पत्र शुरू करने की इच्छा है, यह विदित हुआ। परन्तु पत्र की आर्थिक स्थिति और उसकी सफलता का पूरा विश्वास हो तभी इस काम में हाथ डालना उचित होगा। हम सभी का यह सदा का अनुभव रहा है कि किसी भी कार्य के उत्पादक पर इस बात की जिम्मेवारी आ पड़ती है कि एक बार हाथ में लिए हुए कार्य को अन्त तक सफलता पूर्वक निबाहता जाय। इस बात को अवश्य ध्यान में रखियेगा।

इसमें तो किसी तरह का संदेह नहीं कि इस पत्र में अपनी ही विचार धारा का सदा प्रतिपादन होगा। किन्तु संघ पर भिन्न भिन्न लोगों द्वारा किये जाने वाले आघातों और आक्षेपों के उत्तर-प्रत्युत्तर देने की झंझट में आप कदापि न पड़ें। हम देखते हैं कि आपके प्रांत के समाचार पत्रों में इन दिनों संघ पर अनन्त झूठ-मूठ आक्षेप किये जा रहे हैं। ये आक्षेप चाहे समाचार पत्रों में किये जायँ या सार्वजनिक सभाओं में, हमें

किसी तरह का उत्तर न देते हुए उनकी पूर्णतया उपेक्षा करनी चाहिये।

प्रेम वृद्धि होती रहे यह अभ्यर्थना—

नागपुर,

ता० १२-११-१९३७

परम मित्र श्री........

सप्रेम नमस्कार।

संघ के संबंध में समाचार पत्रों में या सार्वजनिक सभाओं में चाहे जैसी दुर्भावनाओं से प्रेरित कठोर टीकाएँ की जाँय, या सरासर झूठे आक्षेप किये जाँय, अथवा किसी के भी द्वारा निन्दात्मक प्रलाप किया जाय, किंतु संघ के किसी भी सदस्य को कभी भी इनका उत्तर-प्रत्युत्तर देने के झंझट में न पड़ना चाहिये।

आप लोगों की ओर के समाचार पत्रों में संघ के विरुद्ध जो तूफान खड़ा किया गया है उसके समाचारों से हम सब लोगों का अत्यन्त मनोरंजन हुआ। हमारे मनों पर इस तरह की बातों का कभी भी असर नहीं होता। इस बारे में आप निश्चिंत रहें। आप इस विषय में अवश्य सतर्क रहें कि इस झंझावात से आपकी ओर के संघ-कार्य को जरा भी धक्का न लगने पावे। और यह तो निस्संदेह है कि ऐसी बातों से उलटे अपने कार्य की अभिवृद्धि हुए बिना न रहेगी। प्रेम दृष्टि सदा बनी रहे यही विज्ञापना।

नागपुर शहर,

ता० ८-८-३९

परम मित्र श्री........

प्रेम पूर्वक अनेक आशीर्वाद।..............इसके बाद आपके लिखे अनुसार कुछ दिन चल कर संघ का कार्य वहाँ बंद हो गया, यह भी मैं जानता हूँ। वहाँ कार्य करना कितना कठिन है, इस बात की कल्पना अब मेरी अपेक्षा अधिक तुम्हीं को प्रत्यक्ष अनुभव के कारण हो गई है। किन्तु परिस्थिति चाहे जैसी विकट हो तो भी हमें कार्य तो

करना ही चाहिए। क्योंकि हमने तो इसी बात का बीड़ा उठाया है।

सब बातों पर विचार करके हम इसी निर्णय पर पहुँचे हैं कि तुम्हें स्वयं अपने प्रयत्नों से नवीन परिस्थिति पैदा कर और नये मित्र इकट्ठा कर नवीन क्षेत्र में कार्य का प्रारम्भ कर देना चाहिये। स्वयं लगन और उत्साह से कार्य कर धीरे धीरे लोगों की आँखों में जंचने लायक काम कर दिखाएँ। इससे पहिले के काम को और पुराने लोगों को अलग छोड़ दें। अभी कुछ दिनों तक उन्हें अपनी पुरानी हालत में ही रहने दें। इसके परिणाम स्वरूप काम में किसी तरह की गड़बड़ी न पैदा होगी और तुम अपनी बुद्धि से और स्वतंत्र विचारों से इच्छानुसार कार्य कर सकोगे। पुराने लोगों के बारे में बाद में सोच लेंगे।

तुम स्वयं कॉलेज में पढ़ते हो। इसलिये युवकों से तुम्हारा संबंध आता ही है। और संघ के प्रारम्भ करने में हमें उन्हीं की आवश्यकता अधिक होती है। बाहर गाँवों से कॉलेज में पढ़ने के लिये आये हुए युवकों को इस कार्य की ओर सहज ही आकृष्ट किया जा सकता है। पर हमारा ध्यान अधिकतर उसी स्थान के तरुणों को शामिल करने का रहे। क्योंकि स्थानीय लोगों के भरोसे पर ही शाखा का कार्य चिरस्थायी हो सकता है। जब तुम्हें इस बात का विश्वास हो जाय कि अब शाखा को चिरस्थायी स्वरूप प्राप्त हो गया है, तब ध्वज लगाने में कोई हर्ज नहीं। तब तक बिना ध्वज के ही संघ के सारे कार्य-क्रम चालू रखें। लेकिन संघ-वृत्ति उत्पन्न करने का प्रयत्न सावधानी-पूर्वक शुरू से ही होना चाहिए।

नागपुर शहर,
ता० ४-१०-३९

परम मित्र..........

प्रेम पूर्वक अनेक आशीर्वाद। आपके ता० १९-९-३९ और २९-९-३९ के पत्र पहुँचे। यह पढ़कर अत्यन्त आनन्द हुआ कि तुम्हारा विश्वास है कि इसके आगे.....में संघ-कार्य की जोरों से प्रगति होगी।

किसी भी स्थान के समाज का गहरा अध्ययन किये बिना हम वहाँ के आतंरिक रहस्यों को जान नहीं सकते और हमें सफलता का गुरुमंत्र भी प्राप्त नहा होता। यदि हम कहीं के समाज में कुछ अन्दर तक प्रवेश पा जायें और लोगों से घनिष्ठ संबंध स्थापित कर पायें तो वहाँ की परिस्थिति स्पष्ट रूप से आँखों के सामने आ जाती है। वहाँ के चढ़ाव-उतार, गुण दोष आदि साफ दिखाई पड़ने लगते हैं और हम अपने मार्ग पर भली भाँति अग्रसर हो सकते हैं। मेरा विश्वास है कि कुछ दिन और··········में बिताने के बाद उधर के कार्य के बारे में आपका उत्साह कई गुना बढ़ जायगा।

महत्व इसी बात का है कि कहीं भी चाहे जैसी आपत्तियों का सामना करते हुए, अपनी कार्य पद्धति में बिलकुल हेर-फेरे न देते हुए, हम संघ-कार्य बढ़ाते जाँय। संघ जानता है केवल संगठन करना। इसके सिवाय और किसी क्षेत्र में उतरने की संघ की इच्छा नहीं। और एक बार लोगों की समझ में आ जाय कि यही नीति संगठन की श्रेष्ठता की द्योतक है। बस फिर काम में किसी तरह की अड़चन न आवेगी। कुछ ही दिनों तक अपने सहवास में रहने पर से यह बात उन लोगों को स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगती है और उनकी श्रद्धा संगठन पर उत्तरोत्तर दृढ़ होती जाती है। किन्तु इसके लिए अपने अविरत उद्योग की आवश्यकता है। और यह गुण आप में होने के कारण ही आप किसी भी परिस्थिति में यश प्राप्त कर सकते हैं।············

सूक्ति संग्रह

१—राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का मतलब है—राष्ट्र की सेवा करने के हेतु स्वयं प्रेरणा से—खुद ही—अग्रसर होने वाले लोगों द्वारा राष्ट्रकार्य के लिये स्थापित संघ। अपने राष्ट्र की सेवा करने के लिये हरएक राष्ट्र के लोग इस तरह का संघ निर्माण करते हैं। हमारा यह प्यारा हिन्दुस्थान देश—यह पवित्र हिन्दू राष्ट्र—हमारी कर्तव्य भूमि होने के कारण हम लोगों ने अपने राष्ट्रीय हित की रक्षा के लिये इस संघ को अपने देश में स्थापित किया है, जिसके द्वारा हम राष्ट्र की हर तरह से उन्नति करना चाहते हैं।

२—हमें पहिले इस बात का विचार करना चाहिये कि "राष्ट्र" का अर्थ क्या होता है? किसी घने जंगल को, जलहीन मरुस्थल को या निर्जन भूभाग को राष्ट्र नहीं कहते। जिस भूभाग पर एक विशेष जाति के, विशेष धर्म के, विशेष परम्परा वाले, विशेष विचारधारा वाले और विशिष्ट इतिहास वाले लोग एकत्रित रहते हैं, वह भूभाग "राष्ट्र" माना जाता है। तथा वह राष्ट्र भी उन्हीं लोगों के नाम से पहिचाना जाता है। ऐसे सजातीय लोगों की हिताहित भावनाएँ एक सी होने के कारण उनमें एक विशिष्ट प्रकार की एकात्मता होती है और उनकी दिनों-दिन समृद्धि होती जाती है। हम ऐसे लोगों के समूह को "राष्ट्र" नाम नहीं दे सकते जो भिन्न भिन्न संस्कृतियों वाले, भिन्न भिन्न विचारधाराओं वाले हों, तथा जिनके इतिहास भिन्न हों, हिताहित कल्पनाएँ परस्पर

विरोधी हों, परस्पर शत्रु भाव मानते हों; जिनके आपसी संबंध भक्ष्य-भक्षक के रहे हों और जिनके एकत्रित रहने के मूल कारण भी एक से न हों।

३—अन्य राष्ट्रों के आंदोलनों से हिन्दुस्थान के आंदोलनों की तुलना करना अयोग्य होगा। क्योंकि हम हैं पराधीन और वे राष्ट्र हैं स्वतन्त्र। और हम विदेशों का मुँह ताकें भी किसलिए ? आप अपने ही इतिहास की ओर जरा दृष्टिपात करें तो आपको उसमें न जाने कितने स्फूर्तिं-दायक प्रसंग दिखाई पड़ेंगे। अपने ही इतिहास के आधार पर खड़े होने की हमें आदत होनी चाहिये। इसके साथ ही साथ संसार की ओर दुर्लक्ष करने से भी काम न चलेगा। आज हम छत्रपति शिवाजी के युग में नहीं रहते। हम आज ऐसे युग में रहते हैं जिसमें मनुष्यों की तो क्या वृक्षों तक का हिसाब रखा जाता है। हर रास्ता नापा जा चुका है, मीलों में ही नहीं; इंच-इंच भी। इसलिये बाहिरी संसार की ओर से आँख मूँदकर जीना भी असंभव है। आप स्फूर्ति लीजिए अपने ही इतिहास से। इसके लिए हमें दुनियाँ की ओर ताकने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं। परन्तु अन्य बातों में सारी दुनियाँ की ओर ध्यान देना चाहिए और परिस्थिति को भली-भांति समझ लेना चाहिये।

४—संघ को नया झंडा खड़ा नहीं करना है। भगवे ध्वज का निर्माण संघ ने नहीं किया। संघ ने तो उसी परम पवित्र भगवे ध्वज को राष्ट्रीय ध्वज के रूप में स्वीकार किया है जो कि हजारों वर्षों से राष्ट्र और धर्म का ध्वज था। भगवे ध्वज के पीछे इतिहास है, परंपरा है। वह हिन्दू संस्कृति का द्योतक है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का निर्माण हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू राष्ट्र की रक्षा के लिये हुआ है। इसलिये जो जो वस्तुयें इस संस्कृति की प्रतीक हैं, उनकी संघ रक्षा करेगा। भगवा ध्वज हिन्दू धर्म और हिन्दू राष्ट्र का प्रतीक होने के कारण उसे राष्ट्रीय ध्वज मानना संघ का कर्तव्य है।

५—हिन्दू समाज में पैदा होने के कारण इस संगठन के कार्य की जिम्मेवारी हमारे सिर पर है। उसे हमको पूरी तरह निभाना होगा। यह जिम्मेवारी दिन प्रतिदिन अधिकाधिक बढ़ती चली जा रही है। हमारा कार्यक्षेत्र बड़ा विशाल है। वह किसी एक खास गाँव या प्रांत तक ही सीमित नहीं। आसेतु-हिमाचल अखिल भारतवर्ष हमारी कार्य-भूमि है। हमारा दृष्टिकोण विशाल होना चाहिये। हमें ऐसा लगना चाहिये कि समूचा भारतवर्ष हमारा घर है। हम किस सीमा तक और कौनसा कार्य कर सकते हैं यह पहले निश्चित कर उसके अनुसार हम अपने जीवन का आयोजन करें और प्रतिज्ञापूर्वक उस कार्य को पूरा करके ही रहें।

६—संघ-कार्य है हिन्दू समाज को अपने हाथों अपना कल्याण साधन कर सकने योग्य समर्थ बनाना। हमें यह अजीब लत लग गई है कि अपने पेट में तो चूहे डंड पेलते हैं और हम दूसरों की भूख शान्त करने के हेतु पूछ-ताछ करने में व्यग्र रहते हैं। इस लत का नाश हुए बिना उन्नति होना असंभव है। हिन्दू समाज के कल्याण का अर्थ है उसका स्वसंरक्षणक्षम होना।

७—हमें नवीन कुछ नहीं करना है। हमारे पूर्वजों ने जिस भांति समाज और संस्कृति की सेवा की, जो ध्येय अपने सामने रखे और उनकी प्राप्ति के लिए दिन रात प्रयत्न किये, उन्हीं ध्येयों को उसी भांति हमें भी सिद्ध करना है और उनका अधूरा रहा कार्य पूरा कर राष्ट्र सेवा करनी है।

८—जो जो विदेशी लोग हिन्दू संस्कृति को विध्वंस कर हिन्दुओं को सदा के लिये गुलामी में जकड़ने के उद्देश्य से हिन्दुस्थान में आये और आज यहाँ रहते हैं, उन सभी के भीषण आक्रमणों से हिन्दू समाज की रक्षा करने की, इस कार्य में हर प्रकार के कष्टों को सहने की, आने वाले संकटों का सामना करने की, इतना ही नहीं, सदा प्राणार्पण करने को उद्यत रहने की मनोवृत्ति सारे समाज में उत्पन्न कर, समाज को संगठित

बनाने का कार्य संघ को करना है।

९—संघ का संस्कारों पर अत्यन्त विश्वास है। जैसे संस्कार, वैसी ही वृत्ति बनती है, और एक ही वृत्ति के अनेक लोगों के एकत्रित होने से ऐसा वातावरण उत्पन्न होता है जो संगठन के लिये पोषक हो। सारे देश भर में इस तरह का पवित्र, श्रद्धायुक्त, ध्येयनिष्ठा के रंग में रंगा हुआ, निराशा को नष्ट करने वाला, हिम्मत बढ़ाने वाला स्फूर्तिदायक वातावरण तैयार करो। स्वयंसेवक जहां जाय वहाँ यह वातावरण अपने साथ ले जाय। यह वातावरण शुद्ध रखने के लिये स्वयंसेवक अपने पंच प्राणों से अहोरात्र जागरूक रहे। एक बार ऐसा कार्यक्षम वातावरण बनाये रखने और बढ़ाने की वृत्ति उत्पन्न भर हो जाय, फिर तो संघ को अन्य किसी का डर नहीं।

१०—संघ का कार्य और संघ की विचार धारा हमारा कोई नया आविष्कार नहीं है। संघ ने तो अपने परम पवित्र सनातन हिन्दू धर्म, अपनी पुरातन संस्कृति, अपने स्वयं सिद्ध हिन्दू राष्ट्र और अनादिकाल से प्रचलित परम पवित्र भगवे ध्वज को ज्यों के त्यों आप लोगों के सामने रखा है। उपर्युक्त बातों में नव चेतना भरने के लिये संघ जैसी आवश्यक हो, वैसी कार्य-पद्धति समयानुसार अपनायेगा। इसके अलावा और कोई भी नई बात स्वीकार करने को संघ तैयार नहीं।

११—संघ ने किसी व्यक्ति विशेष को अपने गुरुस्थान पर न रख कर परम पवित्र भगवे ध्वज को ही गुरु माना है। इसका कारण यह है कि व्यक्ति चाहे जितना महान् हो तो भी निरन्तर, अचल और पूर्ण नहीं रह सकता। इसलिये व्यक्ति विशेष को गुरु मान कर अपनी स्थिति विचित्र सी कर लेने की अपेक्षा हमने उस जयिष्णु और प्रभविष्णु भगवे ध्वज को गुरु माना है, जिसमें हमारा इतिहास, परम्परा, राष्ट्र के स्वार्थ त्याग, इतना ही नहीं, राष्ट्रीयत्व के सभी मूल तत्वों का समन्वय हुआ है। इस अटल और उदात्त ध्वज से हमें जो स्फूर्ति प्राप्त होती है वह अन्य किसी भी मानवीय विभूति से प्राप्त होने वाली स्फूर्ति की अपेक्षा श्रेष्ठ है।

१२—"अहिंसा परमो धर्मः" यह तत्त्व हिन्दू समाज के रोम-रोम में व्याप्त है। इसलिये सब को अहिंसा का सबक सिखाने का दायित्व भी हिन्दुओं पर ही आता है। पर यदि हम यह अभिलाषा करते हैं कि दूसरे लोग हमारा सदुपदेश सुनें तो हममें योग्य सामर्थ्य होना ही चाहिए। आज हिन्दू समाज दुर्बल है और हिंसक वृत्ति के लोग कमजोर समाज की कौड़ी भर भी परवाह नहीं करते। इसलिये यदि हम अहिंसा मन्त्र को घूँट हिंसात्मक वृत्ति के लोगों के गले उतारना चाहते हैं तो हमें इतना सामर्थ्यशाली बनना चाहिये कि जिससे उन लोगों पर हमारे उपदेश का परिणाम हो। और यदि हमारी यह इच्छा है कि हिन्दुस्थान में अहिंसा का साम्राज्य फैले तो हिन्दू समाज की दुर्बलता को नष्ट कर उसे बलशाली बनाना नितान्त आवश्यक है।

१३—हम लोग इस संघ के भिन्न-भिन्न अवयव (घटक) हैं। अर्थात् संघ पूर्ण रूप से हमारा है। जो संबंध अपने शरीर और उसके अंगों में है वही सम्बन्ध संघ में और हम में है। शरीर के सारे अवयवों का विकास एक सा और एक ही समय होता जाय तभी शरीर समर्थ बनकर सुघड़ प्रतीत होने लगता है। कल्पना कीजिये कि हम ऐसे व्यायाम करते हैं जिनसे केवल छाती और हाथ ही सुदृढ़ बनते हैं परन्तु पैरों की पूरी तरह उपेक्षा ही करते हैं तो फिर मोर के समान हमारे भी पैर कृश और दुर्बल हो जायँगे और उस शरीर में ठीक नहीं जचेंगे जो कि व्यायाम के कारण बलशाली और प्रचंड बन चुका है। इतना ही नहीं समय पड़ने पर ये कमजोर पैर पराक्रम में तुम्हारा साथ भी न दे सकेंगे। ऐन मौके पर तुम्हें धोखा खाना होगा। पचीस तीस मील पैदल चलना हो तो आपके ये पैर लड़खड़ाने लगेंगे, पहाड़ी या पर्वत पर चढ़ना हो तब वे पैर पीछे हटना चाहेंगे और तुम्हारे हाथ जिन महान् पराक्रमों के लिये फड़क उठेंगे उन्हें ये पांव पूर्ण न होने देंगे। हम लोग यदि संघ के हाथ पांव हैं तो क्या हम सभी की एक साथ एक सी उन्नति न होनी चाहिये? और इसे सिद्ध करने के लिये क्या हर

एक का संघ के सभी कार्यक्रमों में नियमित रूप से भाग लेना आवश्यक नहीं है ?

१४—एक बार हमारे अन्तःकरण में यह भाव उत्पन्न हो जाय, कि हमारे देश का विपन्नावस्था से उद्धार करने के लिये ईश्वर ने जिन-जिन पुरुषों की योजना की है उनमें हम भी एक हैं। ऐसी आत्मानुभूति होने पर हम स्वभाविकतया अपनी जिम्मेदारी का महत्व समझ कर अंगीकृत कार्य पूरा करने के लिये अपनी सभी शक्तियां केन्द्रित कर प्राणार्पण से प्रयत्न करते हैं और फिर निम्न पंक्तियाँ हमारा ध्येय वाक्य बन जाती हैं—

"नहीं नर-देही का भरोसा, कब आयुष घट होवे रीता ?
आये प्रसंग कैसा, कौन जाने ?
इसलिये रहना सावधान ! यथा शक्ति करते जाना काम
स्वदेश भक्ति से भर देना भूमंडल।"

१५—संगठन शास्त्र में अभिमान, डींग, बल जबरी या व्यक्तिगत बड़प्पन के लिये स्थान रह ही नहीं सकता। संगठन शब्द से यही ध्वनित होता है कि इसमें आत्माभिमान का अस्तित्व संभव ही नहीं। अपने व्यक्तित्व के टट्टू को जहाँ तहाँ आ खड़ा करने से संगठन नहीं हो सकता। परन्तु साथ ही संगठन के लिये आदर्श व्यक्तित्व के गुणों की अत्यन्त आवश्यकता है। इसमें संदेह नहीं कि अन्य क्षेत्रों में आपके गुणों की भिन्न प्रकार से कदर की जायगी और इन गुणों के कारण आप कीर्तिमान बन सकेंगे। परन्तु वे गुण सार्थक तभी होंगे जब कि आप अपना सर्वस्व संगठन के कार्य में लगा देंगे।

१६—तुम्हें अपने जीवन का आयोजन इसी ढंग से करना चाहिये कि जिसमें संघ-कार्य सबसे प्रमुख रहेगा। तुम पर यह कह कर मुँह छिपाने की बारी नहीं आनी चाहिये कि मेरी अपनी परिस्थिति के अनुसार मुझसे जो कुछ थोड़ा बहुत बनता है वह करता हूँ। मैं यह नहीं कहता कि तुम नौकरी अथवा गृहस्थी मत करो। किंतु इतना भर जरूर कहता

हूँ कि ऐसी ही नौकरी ढूँढो, जिसमें तुम संघ-कार्य की ओर ध्यान दे सकोगे। वास्तव में तो तुम्हें यह सिद्ध कर देना चाहिये कि नौकरी करने पर भी नौकरी न करने वाले की अपेक्षा तुम ज्यादा कार्य कर सकते हो। घरबार के फंदे में न पड़ने वाले जीव की अपेक्षा घरबार गृहस्थी को पूरी तरह से निभा कर भी मैं संघ-कार्य ज्यादा करता हूँ यह कहने की जिसमें गुंजाइश रहे, इस हद तक तुम्हारा आचरण ध्येयनिष्ठ होना चाहिये। सारांशतः तुम्हारा बर्ताव हमेशा इसी तरह का होना चाहिये कि तुम स्वयं अथवा दूसरे लोग यही कह सकें कि क्या तुम्हारी नौकरी, क्या तुम्हारी गृहस्थी, तुम्हारा सब कुछ संघ के ही लिये हैं।

१७—वास्तविक एकता उन्हीं लोगों की हो सकती है, जो कि समान आचार-विचार वाले, समान परम्परा वाले, समान संस्कृति वाले और समान ध्येय युक्त होते हैं। हम लोगों में चाहे जितने ऊपरी मतभेद दिखाई दें परन्तु हम सारे हिन्दू तत्वतः एक राष्ट्र हैं। हमारी धमनियों में एक सा रक्त बह रहा है। हमारी पवित्र भाषा एक है। हमारे राजनीति, शास्त्र, समाज रचना और तत्वज्ञान भी एक हैं। इस प्रकार हमारे संगठन की नींव शास्त्र शुद्ध है।

१८—अपने से दुर्बल जीवों पर आक्रमण करना संसार के प्राणी मात्र का सहज स्वभाव है। क्योंकि मनुष्य प्राणी अन्य प्राणियों की अपेक्षा उन्नत है, उसे इस पशुवृत्ति को छोड़ देना चाहिये। सिद्धांत के तौर पर कहने भर के लिये यह बात यद्यपि मधुर सी लगती हो, प्रत्यक्ष आचरण में सिद्ध करने का समय अभी बहुत दूर है। दरमियान में निसर्गप्रवृत्ति के अनुसार दुर्बल जीवों पर होने वाले प्रबलों के आक्रमणों का तांता बराबर पहले जैसा ही लगा रहेगा। इसमें सच्चा दोषी तो वही समाज है जो स्वयं दुर्बल रह कर पड़ोस के दूसरे बलवान समाज की आक्रमणकारी प्रवृत्तियों को उत्तेजित करता है। इस प्रकार के आक्रमणों की जड़ में दुर्बल समाज की दुर्बलता ही प्रायः पाई

जाती है। संसार की शांति को भंग करने का पाप भी ऐसे दुर्बल समाज के माथे ही पड़ता है। इसी लिये आक्रमणकारियों पर दोषारोपण करने में व्यर्थ समय न खोते हुये प्रकृति के उपर्युक्त नियम को ठीक ठीक समझकर संसार की अशांति का मूल कारण जो निजी दुर्बलता, उसे हर यत्न से दूर करना यही दुर्बल समाज का कर्तव्य होता है।

१९—संघ के प्रत्येक स्वयंसेवक को आकर्षण का केन्द्र बनना चाहिये। पांच पचीस लोगों को सदैव अपने आसपास आकृष्ट कर रखने की कला में वह प्रवीण होना चाहिये। उसमें एक न एक गुण पूरी मात्रा में होना ही चाहिये। जिसके शब्दों में अमृत बरसता हो, परिस्थिति पहिचान सकने की शक्ति हो और कौन किस काम में उपयोगी हो सकता है, इसकी पूरी परख करके उस उस व्यक्ति को उस काम पर नियुक्त करने की कुशलता हो, वही संगठन कर सकता है

२०—हरएक को यह सोचना चाहिये कि मैं संघ-कार्य कितना और किस भांति कर रहा हूँ। इस प्रकार सोच-विचार कार्य करना चाहिये। यों ही बिना समझे बूझे कुछ न कुछ करते रहना अनुचित है।

संघ-कार्य संख्या वृद्धि और गुण-निर्माण, इन दोनों दृष्टियों से किया जाना चाहिये। यद्यपि संख्या बढ़ाना आवश्यक है तो भी साथ ही साथ हमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि वह संख्या ध्येयनिष्ठ किस प्रकार होगी। जो नवीन स्वयंसेवक आवें उनमें ध्येयनिष्ठा उत्पन्न करनी चाहिए और पुरानों की ध्येयनिष्ठा को और भी ओप (पालिश) देकर अधिकतर निर्मल बनाते जाना चाहिये। यह प्रत्येक स्वयंसेवक का कर्त्तव्य है।

२१—यदि कभी भूल से आपके मित्र को भी दोषी ठहराया जाय तो भी उसका पक्ष न लो। यदि इस प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हों कि मित्र-प्रेम निभाया जाय या संघ-प्रेम, अथवा कुटुम्ब या संघ-कार्य, तो आपको ऐसा ही उत्तर देना चाहिये कि पहले संघ और मित्र, बन्धु,

कुटुम्ब आदि इसके बाद। संघ के अतिरिक्त सुख दुःख की चाहे जो बात हो, यदि संघ के लिये उसे ठुकराना आवश्यक हो तो निःसंकोच ठुकरा दो। संघ में अलग अलग गुट न बनाओ। सारा संगठन अपना है। उसी के लिए आपको जीना है और उसी के लिए मरना, यही सोच कर आपको व्यवहार करना चाहिए।

२२—निरुपद्रविता हम लोगों में एक सद्गुण माना जाता है। सदा चुप रहने वाला मनुष्य लोगों के द्वारा बड़ा सज्जन माना जाता है। सज्जन कौन है? लोग कहते हैं—सज्जन वही है जो औरों के पचड़े में कभी नहीं पड़ता, स्नान के बाद भोजन और फिर आफिस या दुकान, उसके पश्चात पुनः भोजन और सोना जिसका दैनिक कार्यक्रम है। लोग आपस में कहते हैं—"देखिये कैसे हैं गोविन्दराम जी! कितने शांत! कितने सीधे! पचीस वर्षों से पड़ोस में रहते हैं पर किसी को पता तक नहीं होता कि वे इस पड़ोस में रहते हैं। इतना साफ दिल सज्जन मनुष्य बिरला ही होगा।" पर हमें ऐसा सज्जन नहीं चाहिए। चुपचाप अत्याचार सहने वाला व्यक्ति यदि सज्जन माना जाय और यदि ऐसे सज्जनों की भरमार होवे तो हिन्दू समाज दुनियाँ में जीवित नहीं रह सकता और फिर कभी भी हिन्दुस्थान उच्च अवस्था को प्राप्त नहीं करे सकता।

२३—जिस ढंग की मनुष्य की भावना हो, उसी ढंग का उसका बर्ताव होता है। इसलिये महत्ता है केवल भावना की। देहली की मुगल सल्तनत जैसी पचासों सल्तनतें ठुकरा कर मिट्टी पलीद करने की और वैसी ही पचासों नई सल्तनतें अपनी भुजाओं के बल पर पैदा करने की ताकत रखने वाला महाराजा जयसिंह मुगलों का गुलाम बनकर क्यों रहा? और चंद मरहठों के सहारे स्वराज्य स्थापना करने का प्रयत्न करने वाला शिवाजी हिन्दू-पद-पादशाही की स्थापना करने में क्यों सफल रहा? इसका कारण पहिले की आत्मगौरवशून्यता और दूसरे की आत्मगौरव भावना ही है। आत्मगौरव की इस भावना को, जो आज

नष्टप्राय भी हो गई है, फिर से हिन्दू समाज में जगाने की परम आवश्यकता है।

२३—आजकल हमारी बहुत प्रशंसा हो रही है। पर इसके कारण घमंड में आकर यह न समझ बैठियेगा कि हमने कोई महान् कार्य कर डाला है। इस प्रकार का व्यक्तिशः अभिमान तो खराब है ही पर संघशः भी ऐसा अभिमान करना अयोग्य होगा। लोग हमारी प्रशंसा करते हैं, इस बात का यही अर्थ लगाना चाहिये कि उन्हें हमारा कार्य प्यारा लगता है और प्रशंसा से फूल कर कुप्पा न होते हुए और अधिक लगन से कार्य में रत हो जाना चाहिये। प्रशंसा सुनकर मन प्रफुल्लित तो अवश्य होता है पर साथ ही साथ हमें यह भी न भूलना चाहिए कि इससे हमारी जिम्मेवारी भी बढ़ती जाती है।

२४—संघ को केवल मोटी-बुद्धि-वाले और कल्पनाशून्य अनुयायी निर्माण नहीं करना है। राष्ट्र नेता उत्पन्न करने हैं। आप में से हर एक को योग्य नेतृत्व करना है। यह अपेक्षा आप से है। अतः ऐसा न समझना चाहिये कि केवल एक घंटे के लिये संघ में आने से ही हमारे कर्तव्य की इतिश्री हो जाती है। संघ के कार्यक्रमों के अतिरिक्त बाकी का समय इसी के लिये छोड़ा गया है कि आप उत्तम रीति से विद्यार्जन कर, शीघ्रातिशीघ्र बड़े होने पर संघ-कार्य कर सकें। परन्तु आपका व्यवहार सदा इसी दृष्टिकोण से हो कि विद्यार्जन के बाद संघ-कार्य ही आपके जीवन का एक मात्र ध्येय है।

२६—संघ का स्वयंसेवक चाहे जहाँ रहे, उसे सदा संघ कार्य के लिये प्राणपण से चेष्टा जारी रखनी चाहिए। वह जिस गाँव में गया हो, वहाँ यदि संघ की शाखा हो तो उसे नियमित रूप से शाखा में उपस्थित होकर उस शाखा की उन्नति करने का प्रयत्न करना चाहिये। वहाँ संघ शाखा न हो तो संघ के तत्व का प्रचार करके संघ-स्थापना का प्रयत्न करना चाहिये।

२७—स्वयंसेवक को चाहिए कि संघ के ध्येय को उत्तम प्रकार से

समझ-बूझकर सदा अपना व्यवहार उस ध्येय के लिये पोषक ही रखें।

२८—हम यद्यपि भिन्न भिन्न शाखाओं में काम करते हैं, फिर भी स्वयंसेवक भरती के विशेष कार्य की जिम्मेवारी सभी पर है। इस बात को न भूलते हुए, इस कार्य को मुख्य कार्य मानते हुए हर एक को मनसा-वाचा-कर्मणा से इस कार्य में लगे रहना चाहिये।

२९—यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं कि संघ पर एक ओर से प्रशंसा और पुष्पवृष्टि हो और दूसरी ओर से संघ कार्य का विरोध हो। क्योंकि आज तक का अनुभव यही रहा है कि हर तरह के सत्कार्यों के मार्ग में ऐसी बाधाएँ आती ही हैं। परन्तु यह संतोष का विषय है कि इसी बीच में यह बात जनता की नजर में भी आ रही है। स्वयंसेवकों की निष्ठा की नींव पर खड़ा हुआ यह संघ इस तरह के किसी भी विरोध की परवाह न करते हुए उत्तरोत्तर प्रगति कर रहा है और भविष्य में भी प्रगति करता ही जायगा।

३०—संघ के सिद्धांतों पर अटल श्रद्धा रखो। हिम्मत और आत्म-विश्वास से काम लो। हम लोग स्वदेश, स्वधर्म और अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए कटिबद्ध हैं। हमें सत्य का अधिष्ठान है। अतः किसी भय, संकट से घबड़ाने का कोई कारण नहीं। आपत्तियाँ योंही उपस्थित नहीं होतीं। वे तो परमात्मा की कृपा सूचित करती हैं। संकटों द्वारा हमें कसौटी पर कसने और उसमें सफल होने पर आगे का उन्नत मार्ग हमें दिखाने की ईश्वरी इच्छा उस पर से जाहिर होती है। इसीलिये इस श्रद्धा को लेकर आगे बढ़ो कि जहाँ आपत्तियों के पहाड़ टूट पड़ते हों वहीं पर अधिक से अधिक संघ-कार्य हो सकेगा।

३१—कोई यह अभिमान न करे कि किसी खास व्यक्ति के भरोसे ही संघ-कार्य चलता है। संघ-कार्य किसी एक व्यक्ति का नहीं, अपितु सारे समुदाय का है। वह तो हम सबका सांघिक कार्य है। हमें अभी कई स्थानों में संघ का बहुत काफी काम करना है। यह कार्य करने के लिये तरुणों और वृद्धों को यथा सामर्थ्य अग्रसर होना चाहिए। जो

लोग यह पूछते हैं कि संघ ने आज तक क्या किया, उनसे मैं यह पूछूँगा कि आप स्वयं संघ के लिए क्या करने को उद्यत हैं।

२२—केवल प्रतिदिन संघस्थान पर उपस्थित हो जाने मात्र से संघ के प्रति तुम्हारा कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता। सच्चा कार्य तो इसके आगे ही है। हमें सारे हिन्दुस्थान में संघ-शाखाओं का जाल फैलाना है। अपने कार्य की दृष्टि से इसके महत्त्व को समझ लो। कार्य अभी कितना बाकी है, इसको ध्यान में रखते हुए तेजी के साथ कदम आगे बढ़ाओ। एक अनोखा संगठन इस नाते से तुम अपने संघ के विषय में सोचो। महापुरुषों के समान महान् संस्थाएँ भी अपने अल्प जीवन में प्रचण्ड कार्य कर छोड़ती हैं। हर एक स्वयंसेवक की कार्यकुशलता का पूरा-पूरा फायदा मिलने पर ही संघ की प्रगति शीघ्र हो सकेगी और जीते जी हम अपने कार्य की पूर्ति देख सकेंगे।

२३—संगठन में एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से कुछ कहता नहीं। केवल स्वयं कार्य करता जाता है। जहाँ बार-बार कहने सुनने के मौके आते हों, वहाँ यह निश्चित रूप से समझ लेना चाहिए कि काम नहीं हो रहा है। संघ के स्वयंसेवक आपस में मुँह से कुछ नहीं कहते। बोलते हैं उनके अन्तःकरण। उनकी भाषा हृदय की भाषा होती है और वे एक दूसरे की ओर केवल देखते हुए—मूक रहते हुए—कार्य कर सकते हैं, उसे बढ़ा सकते हैं। केवल परस्पर दृष्टि-पात से ही वे अपने विचार आपस में एक दूसरे को समझा सकते हैं।

२४—हिन्दू संस्कृति की रक्षा करने के लिए जो बलशाली संगठन तैयार करना है उसका तात्पर्य केवल संख्या बढ़ाना नहीं, अपितु संघ के लोगों में यह आत्मविश्वास बढ़ाना है कि हम यह कार्य कर सकेंगे।

२५—संघ का ध्येय हिन्दू समाज में इतना बल और ऐसा संगठन उत्पन्न कर देने का है कि जिसके कारण हमारे हिन्दुस्थान देश में आज रहने वाले किंवा भविष्य में यहाँ पदार्पण करने की आशा रखने वाले संसार के कोई भी विदेशी लोग हिन्दू लोगों के सिर पर सवार होने

का दुःसाहस न कर सकें ।

२६—हिन्दू जाति का सुख ही मेरा और मेरे कुटुम्ब का सुख है। हिन्दू जाति पर आने वाली विपत्ति हम सभी के लिए महासंकट है और हिन्दू जाति का अपमान हम सभी का अपमान है। ऐसी आत्मीयता की वृत्ति हिन्दू मात्र के रोम रोम में व्याप्त होनी चाहिए। यही तो है राष्ट्र-धर्म का मूलमंत्र ।

२७—जिसे अपने देश और अपने देशबान्धवों के सिवा और किसी का मोह नहीं, अपने धर्म और धर्मकार्य के सिवा और कोई व्यवसाय नहीं, अपने हिन्दू धर्म की अभिवृद्धि होकर हिन्दू राष्ट्र के प्रताप सूर्य को तेजस्वी रखने के अतिरिक्त अन्य कोई स्वार्थ लालसा नहीं, उसके हृदय में भय, चिंता या निरुत्साह पैदा करने का सामर्थ्य संसार भर में किसी में हो ही नहीं सकता ।

२८—क्या संघ-कार्य आपको दिल से अच्छा लगता है ? क्या आपको अहर्निश संघ-कार्य की धुन लगी रहती है ? क्या हममें इस कार्य के प्रति आत्मीय-भाव पैदा हो गया है, कि इस कार्य के सिवा और कुछ न तो सूझता है, न दिल में चैन ही पड़ती है ? दिन रात के चौबीस घंटों में से हम कितने घंटे संघ का प्रत्यक्ष कार्य या संघ सम्बन्धी विचार करने में व्यतीत करते हैं ?

श्रद्धांजलि

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की ओर से डॉक्टर जी की पुण्यात्मा को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए उनकी मृत्यु के तेरहवें दिन अर्थात् ३ जुलाई सन् १९४० को अखिल भारत की सात सौ संघ-शाखाओं में संघ की विशिष्ट पद्धति से सभाएँ हुई। इन सभाओं में कार्यकर्ताओं तथा स्वयंसेवकों ने अपने हृदय-कपाट खोलकर अपने अन्तःकरण की तीव्र भावनाओं को प्रकट किया। डॉक्टर जी का गुणगान कर उन्होंने अपने अन्तःकरण को पावन किया तथा अपना सर्वस्व समर्पण कर संघ-कार्य को अन्तिम यश प्राप्त करा देने का प्रण किया। इस अवसर पर डाक्टर जी की स्मृति में आद्य सरसंघचालक प्रणाम समर्पित किया गया।

केन्द्र संघस्थान का वृत्तान्त—

तारीख ३ जुलाई को संध्या समय ६ बजे केन्द्र संघस्थान रेशम बाग पर परमपूजनीय डाक्टर जी की दहन भूमि के सामने नागपुर की सब उपशाखाएँ उपस्थित हुई, तथा उस अवसर पर मध्य प्रांतीय संघचालक श्री बाबा साहेब पाध्ये, पूजनीय आबाजी हेडगेवार और परमपूजनीय माधवरावजी गोलवलकर के भाषण हुए। उसी अवसर पर प्रांतीय संघचालक जी ने डाक्टर जी की इच्छानुसार परमपूजनीय माधवराव जी गोलवलकर के नूतन सरसंघचालक के स्थान पर नियुक्त होने की महत्त्वपूर्ण घोषणा की। इस प्रसंग पर दिये गए भाषण नीचे दिये जाते हैं।

प्रांतीय संघचालक माननीय बाबा साहेब पाध्ये का भाषण

"आज हम लोग एक अत्यन्त विलक्षण तथा भयानक परिस्थिति में एकत्र हुए हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आद्य सरसंघचालक की मृत्यु

को भयंकर दुर्घटना देखने का दुर्भाग्य हमें प्राप्त होगा ऐसा यदि किसी ज्योतिषी ने कहा होता, तो हम उसपर कदापि विश्वास न करते। पर अपने संघ के चैतन्यमय प्राण, अपने परमपूजनीय डाक्टर ही अपने में से निकल गये और आज उनके तेरहवें दिन इस प्रकार एकत्र होने का हम सब पर प्रसंग आया है। पिता की वात्सल्यपूर्ण छत्रछाया के निकल जाने पर बच्चों की जो दशा होती है, वही दशा आज हमारी है। अपने डाक्टर साधारण व्यक्ति न थे। वे एक महान् शक्ति थे। संघ की तो वे जीवन शक्ति ही थे। इस अमोघ शक्ति के निकल जाने से आज हमारा सारा भारतवर्ष शोक सागर में डूब गया है।

"डाक्टर साहेब अपने सामने छुटपन से ही एक उच्चतम ध्येय रखकर काम करते थे। अठारह वर्ष लगातार विचार तथा तपश्चर्या करने के पश्चात् ही आपने एक विचार-प्रणाली निश्चित कर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना की। हिन्दू राष्ट्र को वैभव के शिखर पर पहुँचाने वाले इस महान् कार्य को आपने केवल पांच स्वयंसेवकों के साथ आरम्भ किया। यह अल्पारम्भ श्रेयस्कर सिद्ध होने से उन्होंने आज पांच से बढ़ा कर एक से आचार विचार वाले लाखों लोगों का संगठन निर्माण किया है। आपने अपनी विचार प्रणाली तथा कार्य पद्धति की रचना इस कुशलता के साथ की है कि जिससे पक्षोपपक्ष के वैमनस्यों को टालते हुए तथा सब प्रकार के पक्ष भेदों से अलिप्त रहते हुए संघ-कार्य की अखंडित प्रगति होती रहेगी। प्रचलित राजकाज से संबन्ध न रखने में आपने असाधारण चातुर्य प्रकट किया है।

"आपने अपनी कार्य कुशलता तथा निष्ठा से राष्ट्रव्यापी प्रचण्ड संगठन का सुख स्वप्न सत्य सृष्टि में परिणत कर दिखाया। संगठन केवल व्याख्यान से उत्पन्न नहीं होता। उसमें सजीव अन्तःकरणों को एक सांचे में ढालना होता है। एक ही ध्येय के लिये, एक ही मार्ग पर चलने वाले लाखों तरुणों को एक ही सूत्र में बांधना होता है। संघ के स्वयंसेवकों का बन्धुत्व तथा ऐक्य भाव अन्य स्थानों में क्वचित् ही मिलेगा। यह किस

कार्य का फल है ? मैं कहूँगा, परम पूज्य डाक्टर साहेब के पुण्य का। आपके हृदय में इस कार्य की यश सिद्धि "याचि देही याचि डोला" अर्थात् इसी जन्म में, इन्हीं आँखों से देखने की बड़ी प्रबल इच्छा थी। परन्तु ईश्वरेच्छा कुछ और ही थी। यद्यपि डाक्टरजी हमें छोड़ कर चले गये हैं। पर वे हमें अपना मार्ग दिखाकर ही गए हैं। वे इस कार्य को अपूर्ण अवस्था में ही छोड़कर चले गये हैं। यह बात हमें न भूलनी चाहिये। उनकी अतृप्त आशा व आकांक्षाओं को पूर्ण करना हमारा आद्य कर्तव्य है।

"हम सबका दुःखी होना स्वाभाविक है। परन्तु अब उस शोकावेग को विवेक के बांध से बांधकर आगे का कार्य किस प्रकार दूने जोर से आगे बढ़ेगा, इसका विचार करना चाहिये। अब इसके पश्चात् संघ रूप में ही डाक्टर साहेब हमें दीखेंगे। संघ के कार्य को अमर्यादित बढ़ाना ही डाक्टर जी को जीवित रखना है। यह जवाबदारी हमारे तुम्हारे समान सब छोटे बड़े स्वयंसेवकों की है। अब केवल अश्रुसिंचन न करते हुए संघकार्य को अधिकाधिक आगे बढ़ाना, यही डाक्टर जी के प्रति हमारा प्रेम प्रदर्शित करने का एक मात्र मार्ग बचा है। यही कार्य करने का निश्चय हम सबको आज अपने मनों में करना चाहिए।

"डाक्टर जी को संघ की हर तरह की चिंता होने के कारण अपने इहलोक का जीवन समाप्त होने के पहिले ही उन्होंने आगे के सब कार्य की पूर्ण व्यवस्था कर दी है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का संगठन चालकानुवर्ती होने के कारण, उसके चालक की प्रत्येक आज्ञा हमारे लिए परम वंदनीय है। गत ता० २० को, मृत्यु के एक दिन पूर्व डाक्टर जी ने अपने पीछे संघ कार्य की मुख्य धुरी परम पूजनीय माधवराव जी गोलवलकर पर सौंप दी है। आद्य सरसंघचालक के नाते उन्होंने अपना सर्वाधिकार परम पूजनीय माधवरावजी के स्वाधीन किया है। इस बात की मैं आज घोषणा करता हूँ कि हमारे आद्य सरसंघचालक की अन्तिम इच्छानुसार परम पूजनीय माधवरावजी गोलवलकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक

संघ के सरसंघचालक हुए हैं। वे अब अपने लिए डॉक्टर जी के स्थान पर हैं। अपने नूतन सरसंघचालक को मैं अपना पहिला प्रणाम सादर समर्पित करता हूँ।

वयोवृद्ध पूजनीय आबाजी हेडगेवार का भाषण—

"राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सम्बन्ध में मैं कुछ कहूँ ऐसी आवश्यकता नहीं दीखती। संघ-कार्य का ध्येय तथा कार्य पद्धति डॉक्टरजी ने पहले ही बतलादी है। उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन करने का कारण मुझे नहीं दिखाई देता। केवल यह कार्य आगे किस प्रकार जोर से बढ़ना चाहिए, इसीका विचार करना होगा। डॉक्टरजी ने इसी कार्य को अपने हाथ में लिया था, जो एकसौ पचास वर्ष से अधूरा पड़ा था। किंतु उन्हें भी यह काम अपूर्ण छोड़कर ही जाना पड़ा। अब उसे पूरा करने का भार आप लोगों पर आ पड़ा है। डॉक्टर जी ने यह भगवा ध्वज तथा संघ रूपी यह स्वकष्टार्जित सम्पत्ति हमारे स्वाधीन की है। उन्होंने यह कार्य किस परिस्थिति में किया, इसे स्मरण करो। सब प्रकार के विरोध तथा उपहास की परवाह न करते हुए उन्होंने हिन्दू राष्ट्र की घोषणा की। "हिन्दुस्थान हिन्दुओं का" इस प्रकार निर्भीक गर्जना करने वाले वे ही पहिले वीर थे। डॉक्टर जी ने आपके सामने कार्य का आदर्श रखा है। तथा आपको हजारों साथी भी मिला दिये हैं। अतः आप कार्य में जुट जायँ। डॉक्टर गए, इसके लिए दुःख करने की आवश्यकता नहीं। उनका अन्त नहीं हुआ, न कभी हो सकेगा। वे अजरामर हैं; उनका आत्मा अमर है। वह आपके कार्य को बढ़ते हुए देखकर प्रसन्न होगा और तुम्हें स्वर्ग से आशीर्वाद देगा। किन्तु ध्यान रखो, कि आज तक कोरी बातों से कोई कार्य सम्पन्न नहीं हुआ। उसके लिए सारी शक्ति लगाकर परिश्रम करना होगा, खून सुखाकर यश के लिए कीमत देनी होगी। जिस दिन तुम्हारा कार्य यशस्वी होगा, उसी दिन डॉक्टरजी को सच्ची शान्ति मिलेगी। यह शांति उन्हें शीघ्र ही प्राप्त हो, इसलिए अत्यंत वेग से कार्यारम्भ करो। इन्हीं हाथों से छोटे से बड़ा किया हुआ मेरा केशव

आज मुझे छोड़कर चला गया, तो भी कोई चिंता नहीं। परमेश्वर मानों हम सब हिन्दुओं को कसौटी पर कस रहा है। हमें अपनी कृति से सारे संसार को दिखा देना चाहिए कि केवल नाम के हिन्दू इस हिन्दुस्थान में नहीं रहते और यह बात अपने आप नहीं हो सकती। इसके लिए हमें अपने रक्त का बूंद बूंद हर दिन सुखाना होगा। डॉक्टरजी ने संघ के लिए अत्यंत कष्ट उठाया तथा कई रातें उन्होंने बिना पलक लगाये बिताई। अपनी शक्ति, सर्वस्व ध्येय पूर्ति के लिए खर्च हो, इस उद्देश्य से उन्होंने सर्वस्व का बलिदान कर संसार के सुखों को ठुकराया। उनकी दृढ़ता, साहस तथा कार्य निष्ठा आपने देखी ही है। हमें ध्यान रखना चाहिए, कि हमारे डॉक्टर हमें छोड़ कर गए नहीं हैं। आज भी हम उन्हें माधवरावजी गोलवलकर के रूप में देख सकते हैं। हमें उनके सब आदेश डॉक्टरजी के आदेश समझकर ही पालन करने चाहिए, यही मुझे अन्त में कहना है।"

सरसंघचालक पूजनीय गुरूजी का भाषण—

इसके बाद नूतन सरसंघचालक के नाते परमपूजनीय माधवराव जी गोलवलकर ने अपना पहिला भाषण दिया। उन्होंने कहा,

"आज आपके सामने खड़ा होकर बोलने के लिए मेरे पास कोई शब्द नहीं। यह कल्पना ही बहुत भयंकर है, कि आज हम लोग परमपूजनीय आद्य सरसंघचालक को श्रद्धांजलि समर्पित करने को एकत्रित हुए हैं। हम अपनी श्रद्धांजलि उन्हें किस प्रकार अर्पण करना चाहते है? हमारी मां हम पर जिस प्रकार प्रेम करती है, वैसे ही प्रेम का अनुभव उनके सहवास में रहने पर हमें मिला है। उन्होंने हम पर मातृवत् प्रेम किया है। वह प्रेम शब्दों से प्रकट नहीं किया जा सकता। वस्तुतः निरपेक्ष मनुष्य ही प्रेम करना जानता है। बाकी के लोग केवल शब्दों का जाल फैलाते हैं। कुछ समय के पहिले किसी ने मुझसे पूछा कि डॉक्टरजी के विषय में आपका क्या ख्याल है? मैं समझता हूँ कि इस प्रश्न का उत्तर देने की कोई आवश्यकता नहीं। डॉक्टर स्वयं एक

अत्युच्च आदर्श बन चुके थे। और ऐसे महापुरुष के चरणों में जो नत-मस्तक नहीं हो सकता, वह संसार में कुछ नहीं कर सकता। उनमें मां का वात्सल्य, पिता का उत्तरदायित्व तथा गुरु की शिक्षा का समन्वय था। ऐसे महान् व्यक्ति की पूजा करने में मुझे अतिशय गर्व मालूम होता है। यदि मैं ऐसा कहूँ कि वे ही मेरे इष्ट देव थे, तो इसमें किंचित भी अतिशयोक्ति न होगी। डॉक्टरजी की पूजा व्यक्ति-पूजा नहीं हो सकती और यदि कोई उसे व्यक्तिपूजा समझे, तो भी मुझे उसमें अभिमान ही होगा। उनके प्रति ये सद्भाव तथा आदरवृत्ति मुझमें एक ही दिन में उत्पन्न नहीं हुई है। आदमियों को परखने की मेरी वृत्ति अत्यन्त छानबीन की है। आरम्भ में मैं उन्हें केवल एक निराली पद्धति से काम करने वाला एक नेता समझता था। उसके अतिरिक्त डॉक्टरजी के प्रति मेरे मन में किसी भी प्रकार की भावनाएँ न थीं। किन्तु केवल पन्द्रह-सोलह दिन के निरन्तर सहवास से मुझे अनुभव हुआ कि इस सर्व साधारण मनुष्य की तरह रहने वाले व्यक्ति में सचमुच ही कुछ असाधारणता है। किसी प्रकार का सहारा न होते हुए भी इतना प्रचण्ड कार्य करने वाला व्यक्ति सचमुच में एक महान् विभूति ही हो सकता है। अतः व्यक्ति इस नाते से भी उनकी पूजा करने से मैं न हिचकिचाऊँगा। चंदन, पुष्प आदि से पूजा करना तो घटिया मार्ग है; जिसकी पूजा करना उसके समान बनने की कोशिश करना यही सच्ची पूजा है। 'शिवो भूत्वा शिवं यजेत्' यही तो हमारे धर्म की विशेषता है और इसी प्रकार की पूजा हमें करनी चाहिये। डॉक्टरजी की दी हुई इस पूँजी के भरोसे हमें आगे बढ़ना है। राष्ट्र के लिये हृदय के तार तार में कसक होती रहे, इतनी राष्ट्र विषयक आत्मीयता हममें होनी चाहिये। भावनावेश में आकर एक सामान्य मनुष्य भी हुतात्मा बन सकता है। किन्तु दिनों दिन शरीर को घुलाना, तथा वर्षानुवर्ष अपने आपको कण कण जलाते रहना केवल अवतारी पुरुष का ही काम है और हमारे सौभाग्य से ऐसी विभूति हममें निर्माण हुई। यदि हम परमपूज्य डॉक्टरजी के दिव्य आदर्श

का पालन प्रामाणिकता के साथ करें और जहाँ पर उन्होंने इस महान् संगठन के सूत्र को छोड़ा है, वहाँ से उसे उठाकर आगे ही बढ़ाते ले जायँ, तभी यह कहा जा सकेगा कि हमने अपने कर्तव्य का पालन ठीक रीति से किया। उनकी कृपा तथा बलिदान से हमारा कार्य पूर्ण होगा ही।

"डॉक्टर साहब के कार्य की परिणति पंद्रह साल में केवल एक लाख स्वयंसेवक संगठित होने में हुई; इससे अधिक संगठन न हो सका। इस संबंध में बहुधा लोग कई प्रकार के तर्क वितर्क करते हैं और कभी-कभी यह भी कहने का साहस करते हैं, कि डॉक्टरजी की विभूति ही अपर्याप्त थी। परन्तु वास्तव में उनकी महत्ता में इंचमात्र भी न्यूनता न थी। हम लोग ही उनके सच्चे अनुयायी होने के अपात्र सिद्ध हुए। हिन्दू समाज के पत्थरों में से एक लाख चैतन्ययुक्त मूर्तियों का निर्माण होना ही उनकी महानता का प्रमाण है। आज तक, 'संगठन चाहिये, संगठन चाहिये' ऐसा शोर मचाने वाले कई लोग हुए, किन्तु सच्चे हृदयों का अभेद्य संगठन किसने निर्माण किया? एक-एक स्वयंसेवक के विषय में चिन्ता करने वाले तथा उसके लिये आंसू बहाने वाले हजारों हृदय किसने निर्माण किये? डॉक्टर जी ने असंभव को सम्भव कर दिखाया।

डॉक्टर जी को पूजा करने के लिए हम लोग श्रद्धापूर्वक एकत्रित हुए हैं। इस संगठन के द्रष्टा की पूजा करने का एकमेव मार्ग है अपने संकीर्ण व्यक्तितत्व को भूल कर इस संगठन रूपी विराट देह का संवर्धन करना। हम डॉक्टर साहब के पुजारी कहलाने के अधिकारी तभी बनेंगे जब जिस ध्येय की प्राप्ति के लिये यह संगठन निर्माण किया गया है, उस ध्येय को शीघ्र से शीघ्र प्राप्त करने के निश्चय से हम अपने-अपने स्थान पर संघ कार्य में डट जायंगे। डॉक्टर जी ने मुझ सरीखे बिल्कुल साधारण मनुष्य पर इस प्रचण्ड कार्य का भार सौंपा है। उनका यह निर्वाचन देखकर मुझे श्री रामकृष्णजी की एक

बात याद आती है। उनके एक धनवान शिष्य के घर में एक अति मूर्ख तथा निरुपयोगी लड़का था। पर वह रामकृष्णजी के लिये नित्य, नियमितता से पूजा के लिये फूल ला दिया करता था। श्री रामकृष्णजी ने उस लड़के को अपने पास रख कर 'अ, आ' सिखाने का प्रयास किया। छः मास तक माथा पच्ची करने पर भी वह 'आ' तक न लिख सका पर रामकृष्ण जी के स्वार्गवास के पश्चात् वह लड़का उनके आशीर्वाद से उपनिषद जैसे ग्रंथों पर प्रवचन करने लगा तथा बड़े-बड़े विद्वानों को भी ज्ञानामृत देने लगा। महापुरुष केवल अपने स्पर्श से किसी भी मनुष्य में महान् योग्यता उत्पन्न कर सकते हैं, तथा उसे उच्च पद पर पहुँचा सकते हैं। डॉक्टर जी के पुण्य प्रसाद और आशीर्वाद से मेरे विषय में भी वैसी ही परिस्थिति होगी, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। परमपूजनीय डॉक्टरजी ने मुझ पर सरसंघचालकत्व की कल्पनातीत महत्व की जिम्मेवारी का कार्य सौंपा है। किन्तु यह तो है विक्रमादित्य का सिंहासन। इस पर बैठने वाला गड़रिये का लड़का भी योग्य न्याय ही करेगा। आज इस सिंहासन पर बैठने का प्रसंग मुझ जैसे साधारण मनुष्य को प्राप्त हुआ है। किन्तु डॉक्टर जी मेरे मुँह से योग्य बातें ही कहलायेंगे। इसमें कोई शंका नहीं, कि हमारे महान् नेता के पुण्य प्रताप से मेरे हाथ से योग्य बातें ही होंगी। यदि कुछ त्रुटियाँ हुई तो मैं दोषी होऊँगा। अब हम पूर्ण श्रद्धा के साथ अपने कार्य में अग्रसर हो जावें। और यह संघ-कार्य पहिले जैसी निष्ठा से, किंतु दूने उत्साह से और अधिक वेग से, आगे बढ़ायें। यह जबरदस्त संगठन हमें सौंप कर डॉक्टर जी चल बसे हैं। अब अनेक उपदेशक हमें उपदेश देने के लिये आगे बढ़ेंगे। किंतु मैं इन सभी उपदेशकों को नम्रता पूर्वक, पर स्पष्ट रूप से यही कहना चाहता हूँ कि हमारे डॉक्टर जी ने मतमतांतरों के कोलाहल में विलीन होने लायक पिलपिला संगठन हमारे स्वाधीन नहीं किया है। हमारा संगठन एक अभेद्य किला है। इसकी दुर्गबन्दी पर चंचु प्रहार करने वालों की चोंचें टूट जावेंगी।

इतनी दृढ़ तथा मजबूत मोर्चेबन्दी हमारे डॉक्टर जी ने कर रक्खी है। हमारा मार्ग उन्होंने बिलकुल निश्चित रूप से निर्धारित कर दिया है और हम लोग उसी मार्ग से जायेंगे, ऐसा हमने दृढ़ निश्चय किया है। इसी में राष्ट्र का अंतिम कल्याण है और केवल इसी मार्ग से हिन्दू जाति को पूर्व वैभव के मंगल दिवस प्राप्त होने वाले हैं। किसी भी प्रकार के विरोध की परवाह न करते हुए, तथा सब प्रकार के मतभेदों के बवंडर में न फंसते हुए, हम अपने मार्ग पर अटल रहें इसके लिये अंतःकरण में संघकार्य की प्रखर ज्योति सदैव जागृत रख कर तथा मन को कार्य की ओर निरन्तर प्रेरित करते हुए, अपना यह कार्य अथक करते रहें। आप सब मित्र और बंधुओं के सहकार्य से, डॉक्टरजी के इस कार्य की इष्ट सिद्धि हम प्राप्त कर ही लेंगे, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।"

अंत में परमपूजनीय डॉक्टरजी की स्मृति में सादर प्रणाम किया गया और उसके बाद यह कार्य-क्रम समाप्त हुआ। इस अवसर पर नागपुर के सब छोटे बड़े स्वयंसेवक अत्यन्त प्रचण्ड संख्या में उपस्थित थे।

प्रथम मासिक श्राद्ध दिन—

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के केन्द्र-स्थान, अर्थात् नागपुर में परम पूजनीय डॉक्टर हेडगेवार जी का प्रथम मासिक श्राद्ध दिन सैनिक पद्धति से मनाया गया। इस अवसर पर अखिल भारतवर्ष से जगह जगह के संघचालक कार्यकर्त्ता तथा प्रतिनिधिगण अपने दिवंगत् नेता को सैनिक सम्मान से प्रणाम करने के उद्देश्य से एकत्रित हुए थे। पंजाब, युक्तप्रांत, बंगाल, मध्यभारत, महाकोशल, मद्रास, कर्नाटक, खानदेश, बरार, मध्यप्रांत आदि प्रांतों तथा देशी रियासतों में फैली हुई प्रमुख शाखाओं तथा जिलों के चालक इस अवसर पर उपस्थित थे। उनमें बाबू पद्मराज जैन कलकत्ता, एडवोकेट राधाकृष्णन् मद्रास, श्री सद्गोपाल प्रयाग, बाबू तेजो नारायण लखनऊ, बाबू रामकिशोर

शुक्ल कानपुर, पं० रामचंद्रशर्मा पटना, पं० गिरधारी लाल शास्त्री मेरठ, पं० व्यासजी ग्वालियार, श्री दादा साहेब ढमढेरे झाँसी, पं० कुंजीलाल दुबे जबलपुर, श्री नुलकर वकील बिलासपुर, श्री बाबा साहेब महाजन बुरहानपुर, श्री डॉक्टर महोदय खंडवा, श्री धारपुरे इंदौर, श्री बापू साहेब सोनी अकोला, श्री बलवन्तराव देशमुख चांदा, श्री अण्णा साहेब जतकर वकील यवतमाल, श्री दादा साहेब सोमण मेहकर, श्री दादा साहेब अजशो अमरावती, श्री अप्पाजी जोशी वर्धा, श्री गणपतराय देव भंडारा, श्री देवपुजारी बालाघाट, श्री त्रिवेणीलाल धमतरी, श्री काशीनाथ पंथ लिमये सांगली, श्री विनायकराव आपटे, श्री न. गो. अभ्यंकर और डॉ० पलपुले पूना, श्री दादा नाइक बंबई, श्री रावसाहेब बागड़े नगर, श्री मारूराव कुलकर्णी धूलिया, श्री साठें वकील नासिक, इत्यादि सैकड़ों नेता तथा कार्यकर्ता उपस्थित थे । लोकनायक अणे और डॉ. मुंजे खास इसी अवसर के लिये यहां आये थे ।

रेशम बाग संघ स्थान में जहाँ परमपूजनीय डॉक्टर हेडगेवार के पार्थिव शरीर का दहन हुआ था, इस स्थान को लता पल्लवों, पुष्पों इत्यादि से सजाया गया था, जिससे लोग उस भूमि का दर्शन कर सकें। उत्तर की ओर के बिस्तृत मैदान में बड़े मंडप बना कर उनमें निमन्त्रित सज्जनों एवं प्रेक्षक लोगों के बैठने का प्रबन्ध किया गया था। व्यास पीठ का मंडप बीच में था और उसके बांई ओर संघ-चालकों के बैठने के लिये मंडप बनाया गया था । व्यास-पीठ के सामने के मैदान में परमपूजनीय डॉक्टरजी के अनेक प्रसंगो के चित्र सजाये गए थे, तथा उनके सामने ध्वज स्तम्भ स्थित था । इस प्रसंग पर डॉक्टर जी को श्रद्धांजलि अर्पण करने के हेतु नागपुर निवासियों का प्रचण्ड समुदाय उपस्थित था । इसमें नागपुर के सभी प्रमुख नागरिक सम्मिलित थे, जिनमें कुं. फतहसिंहराव भोंसले सरदार गुजर, श्री संत पांचलेगांवकर महाराज, सर कर्नल कुकड़े, श्रीतांबे आदि व्यक्ति विशेष उल्लेखनीय है। स्त्री समुदाय भी बहुसंख्या में उपस्थित था। ध्वनि-वर्धक यंत्र की

व्यवस्था भी की गई थी।

सायंकाल को ठीक पाँच बजे कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। मेघराज ने बड़ी कृपा की थी। अतः सर्वत्र उत्साह दिखाई पड़ता था। परन्तु सच देखा जाय तो यह उत्साह यथार्थ में उत्साह न होकर कार्यक्रम निर्विघ्नता पूर्वक समाप्त हो जावेगा, इसका संतोष था। वस्तुतः इस समय का वातावरण गम्भीर था।

दोनों यंग बटालियन्स तथा दोनों बॉयज् बटालियन्स के बैंड सहित मैदान में पहुँचने के थोड़े ही समय उपरांत नूतन सरसंघचालक परम पूजनीय माधवराव जी गोलवलकर संघ-स्थान पर आ पहुँचे। उनका आगमन होते ही उन्हें सैनिक अभिवन्दना दी गई। सरसंघचालक जी ने ध्वज तथा परमपूजनीय डॉक्टर जी के चित्र को पुष्पहार समर्पित किया और झंडे को फहराया। तत्पश्चात् संघ की प्रार्थना हुई। रेजीमेन्टल सॅल्यूट, रिव्यू आर्डर मार्च, और मार्च पास्ट इन कॉलम तथा ब्लॉक्स आदि प्रकारों से सैनिक वंदना हुई और अंत में बैंड का फ्युनरल स्लो मार्च हुआ। इस कार्य-क्रम के समय चारों ओर स्तब्धता तथा शोक की छाया दृष्टि-गोचर हो रही थी।

इसके उपरांत परमपूजनीय आद्य सरसंघचालक डॉक्टर हेडगेवार जी के सैनिक गणवेषधारी भव्य चित्र को विभिन्न प्रांतों, जिलों, तथा प्रमुख शाखाओं के संघचालकों ने पुष्पहार समर्पित किये।

इसके पश्चात् डॉ हेडगेवार जी को संबोधित करते हुए, स्वयंसेवक द्वारा रचित, सारे स्वयंसेवकों की भावनाओं को तीव्रता से प्रकट करने वाला "अमूर्त मूर्त मूर्तिमंत तुज समान होउँ दे" यह गीत गाया गया।

नागपुर संघचालक श्रीमंत बाबा साहेब घटाटे जी ने प्रथमतः प्रस्ताविक भाषण देकर, परमपूजनीय डॉक्टर हेडगेवार जी ने हिंदू-धर्म, संस्कृति तथा देश रक्षा के लिए अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थिति में निर्मित करके तथा बढ़ाये हुए इस राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संगठन का नेतृत्व जिन महान् व्यक्ति को सौंपा, इन परमपूजनीय माधवराव जी





गोलवलकर के नेतृत्व में संघ का कार्य शीघ्र ही अपनी चरम सीमा तक पहुँच सकेगा, ऐसा विश्वास व्यक्त करते हुए अपने नूतन सरसंघचालक जी को प्रणाम किया। तत्पश्चात् बम्बई प्रांतीय संघचालक श्री काशीनाथराव जी लिमये, लखनऊ के एडवोकेट बाबू तेजोनारायण जी श्रीमान् लोक नायक बापू जी अणे, श्रीयुत बाबा साहेब खापर्डे श्रीयुत डॉ. मुंजे आदि सज्जनों के बड़े मार्मिक व्याख्यान हुए।

नूतन सरसंघचालक जी का भाषण—

सबके पश्चात् नूतन सरसंघचालक परमपूजनीय माधवराव जी गोलवलकर, 'गुरुजी' समारोप का भाषण देने के लिए खड़े हुए। आपने कहा, "इस अवसर पर मेरी मनस्थिति बड़ी ही विचित्र है। अभी तक जो भाषण हो चुके हैं, उनके उपरांत मैं कुछ बोल सकूँगा, ऐसा मुझे नहीं प्रतीत होता। हम लोग अपना एकमेव नेता खो बैठे हैं। इससे अधिक भयंकर दुःखद घटना और कोई हो सकेगी, ऐसा मैं तो नहीं मानता। परमपूजनीय डॉक्टरजी की इच्छा तथा आज्ञा के कारण मैं इस स्थान पर आरूढ़ हुआ हूँ। मेरे संबंध में अभी तक जो कुछ कहा गया है, वह केवल डॉक्टरजी के पुण्य प्रताप का फल है, ऐसा मैं समझता हूँ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का संगठन अमर है। यद्यपि साक्षात् उसके संस्थापक, आद्य सरसंघचालक इस लोक से प्रस्थान कर गए हैं, तो भी यह संगठन सदैव बढ़ता ही जायगा। आज तक के सारे आंदोलन व्यक्ति-निष्ठ थे; पर हमारा संगठन तत्वनिष्ठ है, यह हम संसार को दिखा देंगे। कुछ लोगों का ऐसा आक्षेप था कि हम स्वयंसेवक व्यक्तिपूजक हैं। इसका हमें दुःख नहीं। परन्तु डॉक्टरजी के बाद भी संघ के सब स्वयंसेवक पूर्ववत् कार्य कर रहे हैं, इससे क्या यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि डॉक्टरजी ने हमें अन्ध-श्रद्धा नहीं सिखलाई है। मैं यह नहीं जानता कि डॉक्टर जी ने मुझे इस महान् पद पर क्यों नियुक्त किया? परन्तु मैं इतना अवश्य जानता हूँ, कि मुझ पर उनका असीम प्रेम था। वह प्रेम—जिसकी तुलना में पिता-पुत्र का

अथवा गुरु-शिष्य का प्रेम भी फीका मालूम पड़ता है। मैं यह बात भली भांति जानता हूँ कि डॉक्टर जी के इस परमपवित्र आसन को स्पर्श करने की मुझमें योग्यता नहीं है; परन्तु डॉक्टर जी को अतीन्द्रिय दृष्टि थी, इसका मुझे दृढ़ विश्वास होने के कारण उनका आत्मा मुझे प्रेरित कर मुझसे उपयुक्त सेवा करा लेगा, इसमें मुझे सन्देह नहीं। मैंने अपना तन, मन और आत्मा परमपूजनीय डॉक्टर जी के आधीन कर दिये हैं। वे उनका योग्य उपयोग कर लेंगे, यही मेरी दृढ़ श्रद्धा है।

ध्येय और धोरण का निश्चय—

"हमारे इस संगठन के संबंध में अनेक लोग तरह तरह के प्रश्न पूछते हैं और भविष्य में संघ किस मार्ग का अनुकरण करेगा, इसके संबंध में भी प्रश्न पूछे जाते हैं। वास्तव में संघ का ध्येय और धोरण निश्चित ही है। संघ की ध्येय दृष्टि अचल है। इसमें भविष्य में कभी भी अन्तर होने का कोई कारण नहीं है। संघ को किसी प्रचलित राजनीति या आंदोलन में भाग नहीं लेना है। डॉक्टर जी के द्वारा प्रदत्त दृष्टि और निर्धारित किये हुए मार्ग के अनुसार ही हम लोगों ने अपना कार्य करते रहने का निश्चय किया है। डॉक्टर जी के पश्चात् संघ का क्या होगा ? इस प्रकार की शंका कई लोगों के मन में उठती है। सच पूछो तो इस प्रश्न के उपस्थित होने का कोई कारण नहीं। यह सुनिश्चित है, कि किसी भी प्रकार की प्रतिकूल परिस्थिति में साहस के साथ अपना मार्ग निकालते हुए, सब प्रकार के संकटों को कुचलते हुए, तथा उनकी परवाह न करते हुए, संघ अपने विशिष्ट मार्ग से निरन्तर प्रगति पथ पर ही रहेगा। हम पर जितने आघात होंगे उतनी ही अधिक शक्ति से रबर की गेंद के समान हम उछल कर ऊपर हो उठेंगे। हमारी शक्ति अबाधित रूप से बढ़ती ही जावेगी और एक दिन वह सारे राष्ट्र को व्याप्त कर लेगी। हमको किसी का भी भय नहीं है। हम ऐसी प्रचण्ड और संगठित शक्ति निर्माण करेंगे, जिसके वर्तमान तेज से अत्याचारी दुर्जन भयभीत हो जायँ। एक ध्येय और एक ही मार्ग निश्चित

कर, उसी से हम लोग बढ़ने वाले हैं, इसके संबंध में आपको पूरा विश्वास रहे।

हम तत्व के पुजारी हैं—

"नेता होने की आकांक्षा मुझे कभी न थी। किसी एक महान् तत्व का सेवक बनकर रहने की मेरी एक मात्र इच्छा थी। उस तत्व का दर्शन कराने वाला आदर्श पुरुष मुझे मिला इससे मुझे पूरा संतोष है। जिसके हृदय में सेवा करने की लगन विद्यमान हो वही संघ का सच्चा स्वयंसेवक अथवा अधिकारी हो सकता है। डाक्टर जी ने मुझे सेवा करने का आदेश दिया है। यों तो प्रत्येक स्वयंसेवक राष्ट्रकार्य के हेतु सर्वस्व अर्पण करने की प्रतिज्ञा करके ही संघ में आता है। यह नैतिक जिम्मेवारी स्थान-महात्म्य के कारण मुझ पर और भी अधिक आ पड़ी है। मुझे इसका पूरा स्मरण है इसके लिए मैं पूर्ण रूपेण उद्यत भी हूँ। मुझ में मेरा स्वयं का कुछ नहीं है। जो कुछ है सो केवल डॉक्टर जी की देन है। इसमें कोई संशय नहीं कि उनकी तपस्या के बल पर सब कुछ कार्य यथोचित ही होगा। प्रत्येक स्वयंसेवक के हृदय में जलने वाली ज्योति हम सबको अपना अपना कर्तव्य पूरा करने के लिये आवश्यक प्रकाश प्रदान करेगी, इसका मुझे पूरा भरोसा है। डाक्टर जी की मूल कल्पनाओं के अनुसार ही संघ आज भी प्राणपण से कार्य कर रहा है और आगे भी करता रहेगा। हमें आशा है कि अपने महान् उद्देश्य की पूर्ति शीघ्र ही हम अपने सामने ही देखेंगे।"

इसके उपरांत सरसंघचालक जी ने स्वयं ही सब उपस्थित पाहुनों के, और विशेषतः भोंसले घराने के राजपुत्रों के आभार माने। श्रीमंत राजे बहादुर रघोजीराव भोंसले अस्वस्थ होने के कारण उपस्थित न रह सके, इसका खेद व्यक्त कर, राज-घराने को संघ और डॉक्टर जी के प्रति कितना ममत्व का भाव है, इसका उन्होंने आदर पूर्वक उल्लेख किया।

अंत में ध्वज प्रणाम होने के बाद, रिट्रीट का बिगुल हुआ और

ध्वजावतरण किया गया। इस प्रकार यह गंभीर प्रसंग समाप्त हुआ।

अपने दिवंगत नेता की, आद्य सरसंघचालक की, स्मृति को श्रद्धांजलि अर्पण करने के लिए भारत की प्रमुख संघशाखाओं के जो सैकड़ों प्रतिनिधि आये हुए थे, उनके, और उपस्थित स्वयंसेवकों के मन पर इस प्रसंग का अतिशय गंभीर परिणाम स्पष्टतया दिखाई दे रहा था। जिसे देखो, उसी के अंतःकरण में डाक्टर जी की स्मृति, ओंठों पर डॉक्टर जी का नाम, और आँखों के सामने डॉक्टर जी की प्रतिभा थी। अतिशय दुःख भरे हृदयों से और भारी पैरों से सब लोग अपने अपने निवास-स्थानों को चले गये, परन्तु वापिस जाते समय सबके मन में केवल एक ही विचार था—भविष्य में केन्द्र के प्रभावशाली नेतृत्व में निष्ठा पूर्वक निरन्तर काम करते हुए इस राष्ट्रीय संगठन को प्रचंड वेग से बढ़ाते हुये यशोमन्दिर में पहुँचाना। कारण यशोमन्दिर की प्राप्ति से ही अपने आद्य सरसंघचालक जी के स्मृति मन्दिर को खड़ा करने का श्रेय इस संगठन को मिल सकेगा।

परमपूजनीय आद्यसरसंघचालक जी के प्रति

अर्चना :

स्मरे राष्ट्र सारा भरे प्रेम से जो,
प्रभावी तुम्हारी तपो साधना !
अति व्याकुला बुद्धि से गाऊँ कैसे,
यशोगान की गौरवालापना ?...१
कभी वासना थी न लोकेषणा की।
जगाई कृतीदीप्ति तेजस्वला !
सहस्रों मनों में वही जागृता हो।
उठी हिन्दुस्वातंत्र्य की प्रज्वला !!...२
न हो, देव ! पीड़ा तुम्हें चिंतना से।
सुनोगे हमीं से यशोगर्जना !
बहे नेत्र से भावनानीरधारा।
मदीया यही अश्रुपुष्पार्चना !!...३

अधूरी चिता !

तुम्हें नहीं पहचाना हमने···
अब भी इतने हम नादान।
दास (!) कदर क्या जानें कैसा
करना आजादों का मान !!
होते तुम यदि अन्य कहीं तो ?
कहते रुकती आह ! जबान,
हे पावन ! हे वीर-तपस्वी !
बेशक मिट जाते अरमान !!
हिन्दु-राष्ट्र की अटल नींव का
हे पुण्यात्मन् ! यह निर्माण,
बड़ों बड़ों को भी चुपका सा
धन्य तुम्हारा जीवनदान !!

सुलगा देंगे चिता तुम्हारी
इन्धन बन बन लाखों प्राण !
तुम क्या थे ?-क्या किया ?-कहेगा
सब भारत भावी बलवान !!

जीवन दान :

धन्य तुम्हारा जीवनदान ।।ध्रु०।।
सोती दुनिया जाग रही थी
दूर निराशा भाग रही थी
मन में जलती आग रही थी
उस क्षण में हम खो बैठे हैं तुमको हे नरवरधिमान् ।।१।।
दबी राख में छिपे अग्निकण
उन्हें शोधकर किया वीरप्रण
इन्हीं कणों से विजय करूँ रण
इधर पूर्ति का समय उधर हा ! अकस्मात् दीपक निर्वाण ।।२।।
थे पत्थर अब मूर्ति बने हैं
थे अपयश अब कीर्ति बने हैं
आकांक्षा की पूर्ति बने हैं
अरे दैव ! क्या चला गया वह कलाकार मंत्रज्ञ·महान् ।।३।।
भला चला जा वहाँ कोटि शत्
देख रहे हैं बाट वीर व्रत
जो माता के लिए हुए हुत
देख वहीं से अपने पथके पथिकों का प्रचलन रणगान ।।४।।

समाधि के सन्मुख :

(राग—पहाड़ी)

कण कण भी यदि अणु में तेज हो तुम्हारा ।
चमकायें तिमिर भरा भूमण्डल सारा ।।ध्रु०।।

तब स्मित से फुल्ल सदा
तेज प्रभामय वसुधा
घन तम का नाम कहां ? ध्येय सवेरा ॥१॥
यदि आवाक् धरि गिरा
मधुमधुरा गंभीरा
गूँज रही श्रवणों में अविरत स्वरधारा ॥२॥
चिर समाधि की धूलि
प्रिय पावन पुण्यशालि
दिव्य मलय गंध भरा पवन झकोरा ॥३॥
चिर वियोग समय दिया
कार्य दीप हाथ लिया
जीवनघृत दे अविरत दस दिस उजियारा ॥४॥
कर करके याद तुम्हें
मन ही मन हम रोवें
अंसुवन को पोंछ बटें हाथ दो तुम्हारा ॥५॥
केशव को नित स्मरते
पत्थर भी तर जाते
नग पर्वत चल पड़ते नाम मन्त्र द्वारा ॥६॥
तव समाधि के सन्मुख
नत मस्तक हैं भावुक
हों न कभी, पथ विन्मुख दो असीस प्यारा ॥७॥

राष्ट्रपुरुषः

हे राष्ट्रपुरुष आ बुझती ज्योति जलाजा ॥ध्रु०॥
तू आह छिपी दर्द भरे पीड़ित मन की।
तू आशा अपमानित ताड़ित जन की।
तू आकर यह प्राण मरा फिर से जिलाजा ॥१॥
तू त्रस्त शरीरों का अवशिष्ट बचा प्राण।

तू खण्डित स्मृति चिन्हों का एक ही त्राण।
तू अमृत इन मुर्दों को फिर से पिलाजा ॥२॥

हे निपट निराशा की रजनी के सितारे।
हे पूज्य गुरू भारत जननी के पियारे।
तू सागर में बिछुड़ों से बिन्दु मिलाजा ॥३॥

हे मां की आकांक्षा के सौख्य भरे फल।
हे शुक्र के तारे हे धैर्य के हिमचल।
इस घोर अन्धेरे में हमें धैर्य दिलाजा ॥४॥

आदर्शः

(राग—भैरवी)

अमूर्त मूर्त मूर्तिमंत। आपसदृश हम सब हों।
हैं तुम्हारे चरण शरण। देशकार्यविरत हों ॥ध्रु०॥

खिल जायें कलि-कलियाँ
फूल उठें वेलड़ियाँ
दिव्य गन्ध से उनके। अवनी परिमलित हो ॥१॥

नहीं पुष्पफल वांछा
सर्वस्वार्पण इच्छा!
सन्मुख ध्येयेश ही के। स्वार्थ होम हवन हो ॥२॥

एकमेव ध्येयदेव!
लो सेवा भक्तिभाव!
पूजन से तुम्हारे ही। देवरूप हम सब हों ॥३॥

दिव्य भव्य राष्ट्रदीप!
तेज आपका अनूप
ज्योतिर्मय हृदय सकल। इसी दीप्ति से अब हो ॥४॥

बन जायें तुम समान
उद्धारित वर्धमान
देश, धर्म, संस्कृति संवरक्षित संवर्धित हो ॥५॥

